



107 वां अंक | अवधि : छमाही



SUPREME AUDIT INSTITUTION OF INDIA
लोकहितार्थं सत्यनिष्ठा
Dedicated to Truth in Public Interest

तोशाली



कार्यालय : प्रधान महालेखाकार (लेखा एवं हकदारी)
ओडिशा, भुवनेश्वर - 751001

पूर्वी क्षेत्रों के लेखापरीक्षा एवं लेखा कार्यालयों के लिए प्रधान महालेखाकार (लेखा एवं हकदारी)
कार्यालय की मेजबानी में दिनांक 30.07.2024 को भुवनेश्वर, ओड़िशा
में आयोजित संयुक्त क्षेत्रीय कार्यशाला





सत्यमेव जयते

तोशाली

वर्ष 2024-25

(अप्रैल 2024 – सितंबर 2024)

अंक – 107 अवधि – छमाही

कार्यालय : प्रधान महालेखाकार (लेखा एवं हकदारी)
ओड़िशा, भुवनेश्वर – 751001



तोशाली

पत्रिका परिवार

मुख्य संरक्षक

श्री डी. साहु

प्रधान महालेखाकार (लेखा एवं हकदारी)

संरक्षक

श्री श्रीराज अशोक

वरिष्ठ उप महालेखाकार (प्रशासन)

प्रकाशन एवं मार्गदर्शन समिति

श्री विकास कुमार

उप महालेखाकार (लेखा एवं वीएलसी)

श्री संजय कुमार

उप महालेखाकार (निधि एवं पेंशन)

श्री मनोरंजन पाणिग्राही

वरिष्ठ लेखा अधिकारी (राजभाषा)

संपादक

सुश्री रूपा कुमारी

वरिष्ठ अनुवादक (अनुभाग प्रभारी)

सहयोग

सुश्री सुनीता देवी, कनिष्ठ अनुवादक

श्री शिवानंद, कनिष्ठ अनुवादक

श्री अजय कुमार साव, कनिष्ठ अनुवादक

अमित शाह
गृह मंत्री एवं सहकारिता मंत्री
भारत सरकार



प्रिय देशवासियो!

आप सभी को हिंदी दिवस की हार्दिक शुभकामनाएँ।

इस वर्ष का हिंदी दिवस समारोह विशेष है, क्योंकि 14 सितंबर, 1949 को भारत की संविधान सभा द्वारा हिंदी को संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार किए जाने के 75 वर्ष पूरे हो रहे हैं। यह अत्यंत प्रसन्नता की बात है कि राजभाषा विभाग द्वारा इसे 'राजभाषा हीरक जयंती' के रूप में मनाया जा रहा है।

भारत अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत, पुरातन सभ्यता और भाषिक विविधता के लिए दुनिया में विशिष्ट स्थान रखता है। क्षेत्रीय भाषाओं ने हमारी अतुलनीय सांस्कृतिक विविधता को आगे बढ़ाने और देशवासियों को भारतीयता के अटूट सूत्र में पिरोने का काम किया है। अतः हिंदी सहित सभी भारतीय भाषाओं को भारतीय अस्मिता का प्रतीक कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी।

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान स्वराज, स्वदेशी और स्वभाषा पर विशेष बल दिया गया था। हिंदी ने तब से लेकर आज तक, देश की विविधता में एकता स्थापित करने और सामूहिक सद्भावना को सुदृढ़ करने का महती कार्य किया है। हिंदी की इसी शक्ति के कारण उन दिनों हिंदी की स्वीकार्यता को बढ़ावा देने वालों में लोकमान्य तिलक, महात्मा गाँधी, लाला लाजपत राय, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, राजगोपालाचारी एवं अन्य गैर-हिंदीभाषी महानुभावों की महत्वपूर्ण भूमिका रही थी। आजादी के बाद हिंदी की इसी सर्वसमावेशी प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए हमारे संविधान निर्माताओं ने हिंदी को संघ की राजभाषा का दर्जा दिया तथा संविधान की आठवीं अनुसूची में प्रमुख भारतीय भाषाओं को स्थान दिया।

हिंदी एक ऐसी भाषा है, जिसमें आपको देश की कई भाषाओं के तत्व मिल जाएँगे। इसका इतिहास लिखने वालों ने तो रासो ग्रंथों, सिद्धों-नाथों की वाणियों से लेकर भक्तिकाल के संत कवियों और खड़ी बोली तक इसकी परम्परा को माना है। कवि चंदबरदाई से लेकर महाकवि विद्यापति, ज्योतिरीश्वर ठाकुर, तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई, आंडाल, गुरु नानकदेव जी, संत रैदास, कबीरदास जी से लेकर आज तक कई साहित्यकारों व भाषाविदों ने भारतीय भाषाओं के माध्यम से हिंदी का मार्ग प्रशस्त किया। इसके विकास में उन असंख्य लोकभाषाकारों का भी अमूल्य योगदान है, जो गायन-वादन के द्वारा इस भाषा के आदिरूपों को जन-जन तक पहुँचाते रहे। हिंदी भाषा मैथिली, भोजपुरी, अवधी, ब्रज, हरियाणवी, राजस्थानी, मेवाती, गुजराती, छत्तीसगढ़ी, बघेली, कुँमाउनी, गढ़वाली जैसी मातृभाषाओं के समन्वित रूप से ही तो बनी है। मुझे खुशी है कि हिंदी भाषा इन मातृभाषाओं को अक्षुण्ण रखते हुए आगे बढ़ रही है और लगातार विकसित हो

रही है। आज जब राजभाषा के रूप में हिंदी अपनी 75वीं वर्षगाँठ पूरी कर रही है, तब हमें इसका यह इतिहास जरूर याद रखना चाहिए।

14 सितंबर, 1949 से लेकर लगातार राजभाषा के रूप में हिंदी के संवर्धन के अनेक काम हुए हैं। राजभाषा विभाग की विशाल यात्रा को पीछे मुड़ कर देखें, तो हमें कई महत्वपूर्ण पड़ाव दिखाई देते हैं, जहाँ इस विभाग ने जिम्मेदारीपूर्वक सरकारी तंत्र को भाषिक चेतना के प्रति प्रेरित किया है।

साल 1977 में श्रद्धेय **अटल बिहारी वाजपेयी जी** ने तत्कालीन विदेश मंत्री के रूप में पहली बार संयुक्त राष्ट्र की आम सभा को हिंदी में संबोधित कर राजभाषा का मान बढ़ाया। माननीय **प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी** जब अंतरराष्ट्रीय मंचों पर हिंदी भाषा में संबोधन देते हैं और भारतीय भाषाओं के उद्घरण देते हैं, तो समूचे देश में अपनी भाषा के प्रति गौरव के भाव को और बल मिलता है। बीते 10 वर्षों में हमारी सरकार ने राजभाषा को और भी समृद्ध व सक्षम बनाने के हर संभव कार्य किए हैं। 2018 में अनुवाद टूल कंठस्थ का लोकार्पण हो, 2020 में भारत की नई शिक्षा नीति में मातृभाषाओं को विशेष महत्व देने की अनुशंसा हो, केंद्र शासित प्रदेश जम्मू-कश्मीर में आधिकारिक भाषाओं की सूची में कश्मीरी, डोगरी और हिंदी को शामिल करने के लिए विधेयक पारित करना हो, 2022 में हिंदी दिवस पर कंठस्थ 2.0 का लोकार्पण हो या साल 2021 से हर साल हिंदी दिवस पर 'अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन' आयोजित करना हो, सरकार राजभाषा व भारतीय भाषाओं के संरक्षण के प्रति प्रतिबद्ध है। साथ ही, संसदीय राजभाषा समिति ने अपने प्रतिवेदन का 12वाँ खंड भी माननीय राष्ट्रपति महोदया को सौंप दिया है।

राजभाषा में कार्यों को प्रोत्साहन देने हेतु हमने साल 2022 से संशोधित राजभाषा गौरव पुरस्कार योजना भी शुरू की है जिसके तहत ज्ञान-विज्ञान, अपराध शास्त्र अनुसंधान, पुलिस प्रशासन, संस्कृति, धर्म, कला, धरोहर एवं विधि के क्षेत्र में राजभाषा में मौलिक पुस्तक लेखन हेतु पुरस्कार दिए जाते हैं। साथ ही, राजभाषा विभाग ने डिजिटल शब्दकोश 'हिंदी शब्द सिंधु' का निर्माण भी किया है।

दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र में यह और भी आवश्यक हो जाता है कि हिंदी एवं भारतीय भाषाओं के माध्यम से जन-जन तक संवाद स्थापित करते हुए राष्ट्र की प्रगति सुनिश्चित की जाए। यह अत्यंत आवश्यक है कि हम व्यापक रूप से सरल और सहज भाषा का प्रयोग करके राजभाषा और जनभाषा के बीच की दूरी को पाटें, ताकि देश के हर वर्ग का नागरिक देश की प्रगति से परिचित भी हो और लाभान्वित भी। इस तरह 'आत्मनिर्भर भारत' व 'विकसित भारत' के लक्ष्य को प्राप्त करने में हमारी भारतीय भाषाओं की सशक्त भूमिका रहने वाली है।

मुझे विश्वास है कि हिंदी दिवस एवं राजभाषा हीरक जयंती समारोह, मातृभाषाओं के प्रति राजभाषा विभाग की प्रतिबद्धता को और भी ऊँचाई देने का सार्थक माध्यम बनेगा। मैं राजभाषा विभाग के कार्यों की सराहना करते हुए हिंदी दिवस की हार्दिक शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

वंदे मातरम!

नई दिल्ली

14 सितंबर, 2024

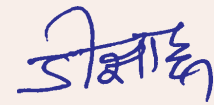
(अमित शाह)

मुख्य संरक्षक की कलम से

किसी भी देश की भाषा संप्रेषण का वह साधन है जो क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर संपर्क स्थापित करने के साथ-साथ सभ्यता, संस्कृति, कला, विकास एवं ज्ञान-विज्ञान के आदान-प्रदान का भी मार्ग प्रशस्त करती है। ऐसे में जरूरी हो जाता है एक ऐसी भाषा का होना जिसे ज्यादा से ज्यादा लोग बोलते एवं समझते हो और जो प्रशासन, कानून, संसद एवं शिक्षा की भाषा भी हो। इसी उद्देश्य से 14 सितंबर, 1949 को संविधान सभा द्वारा हिंदी को राजभाषा के रूप में अंगीकार किया गया। हिंदी भाषा के विकास के साथ-साथ संस्कृत एवं अन्य भारतीय भाषाओं के बीच भाषाई सौहार्द को बढ़ावा देते हुए मातृभाषा में शिक्षा के प्रावधान किए गए। सरकारी कार्यालयों में राजकाज में हिंदी भाषा के प्रति अपने संवैधानिक दायित्वों के निर्वहन के क्रम में हिंदी पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान होता है और जब हिंदी भाषा को दूसरी क्षेत्रीय भाषा की सभ्यता, संस्कृति, कला एवं ज्ञान से जोड़कर पत्रिका का मूर्त रूप दिया जाता है तो वह राष्ट्र की एकता एवं अखंडता की प्रतीक बन जाती है। हमारे कार्यालय की राजभाषा हिंदी पत्रिका “तोशाली” के 107वें अंक का प्रकाशन इसी महान ध्येय के साथ “ओड़िशा की जनजाति” विषय-वस्तु (थीम) को आधार बनाकर किया जा रहा है।

चूंकि इस वर्ष से इस कार्यालय की हिंदी पत्रिका का नाम “वातायन” से बदलकर ओड़िशा राज्य की समृद्ध संस्कृति एवं सभ्यता के प्रतिरूप को लक्ष्य कर “तोशाली” रखा गया है, अतः इस वर्ष “तोशाली” पत्रिका एक नए रंग रूप में ओड़िया सभ्यता को समेटे हुए प्रवेशांक के रूप में भी देखी जा सकती है। “तोशाली” पत्रिका का वर्तमान अंक पाठकों को सौंपते हुए मुझे अत्यंत हर्ष की अनुभूति हो रही है। मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि “तोशाली” पत्रिका हिंदी के प्रति सकारात्मक वातावरण तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी और हिंदी के प्रचार-प्रसार के साथ ही साथ ओड़िशा राज्य की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक पृष्ठभूमि तथा इसकी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के विषय में भी सुधी पाठकों को अवगत कराएगी।

कार्यालय के समस्त अधिकारियों एवं कर्मचारियों द्वारा पत्रिका के प्रकाशन हेतु प्रदत्त रचनाएँ उनकी जिज्ञासा, सृजनात्मकता एवं हिंदी के प्रति उनके रुझान का प्रतिफल है। मैं “तोशाली” पत्रिका के प्रकाशन हेतु संपादक मण्डल व सभी रचनाकारों को बधाई देता हूँ जिनके प्रयास से इस पत्रिका को मूर्त रूप प्रदान किया जा सका है। साथ ही पत्रिका के स्वर्णिम भविष्य के लिए हार्दिक शुभकामनाएं देता हूँ।



(डी. साहु)

प्रधान महालेखाकार (लेखा एवं हकदारी)

शुभकामना संदेश

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि हमारे कार्यालय द्वारा “तोशाली” पत्रिका का 107वां अंक प्रकाशित किया जा रहा है। राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार, प्रयोग और प्रोत्साहन के लिए हिंदी में प्रकाशित पत्रिकाओं की विशेष भूमिका होती है। ये पत्रिकाएं जहां कार्यालय के अधिकारियों एवं कर्मचारियों की रचनात्मक प्रतिभा को उजागर करती हैं, वहीं उनमें राजभाषा हिंदी में कार्य करने के लिए आत्मविश्वास भी पैदा करती है।

हिंदी गृह पत्रिकाओं के माध्यम से कार्यालय में कार्यरत सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को अपने अनुभव एवं अनुभूतियों को हिंदी में रोचक तरीके से अभिव्यक्त करने का सुनहरा अवसर प्राप्त होता है। जिन अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने अपनी लेखन क्षमता और प्रतिभा का परिचय देते हुए पत्रिका के पृष्ठों में अपना स्थान बनाया है, वह निश्चय ही सराहनीय है। उनके इस प्रयास से हिंदी के प्रचार और प्रसार को बल मिलता है। कार्यालय के सभी कार्मिकों ने इस पत्रिका के प्रकाशन में अपना अमूल्य योगदान देकर राजभाषा हिंदी को गौरवान्वित किया है।

मैं इस अंक के सभी रचनाकारों एवं संपादक मंडल को बधाई देता हूँ। आशा है कि पत्रिका में लिखी रचनाएं, लेख एवं कविताएं राजभाषा के प्रचार-प्रसार में सहायक सिद्ध होगी और यह अंक भी पूर्व अंकों की भांति सफल एवं राजभाषा कार्यान्वयन के क्षेत्र में प्रेरणादायक सिद्ध होगा। पत्रिका के सफल प्रकाशन के लिए इस पत्रिका से प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से जुड़े सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को उनके प्रयास के लिए हार्दिक बधाई एवं उज्ज्वल भविष्य के लिए शुभकामनाएं।

7.85

(श्रीराज अशोक)

वरिष्ठ उप महालेखाकार (प्रशासन)

शुभकामना संदेश

संविधान में वर्णित राजभाषा संबंधी उपबंधों एवं राजभाषा नीति के अनुपालन में सरकारी कार्यालयों में हिंदी भाषा के प्रति आदर्श वातावरण तैयार करने हेतु सरकारी कार्यालयों में हिंदी पत्रिकाओं के प्रकाशन का प्रावधान है। वैसे तो हमारे कार्यालय की गृह पत्रिका "वातायन" हमेशा से ही भाषा शैली, साज-सज्जा एवं रचनाओं की विविधता के लिए उल्लेखनीय रही है परन्तु इस वर्ष से इस पत्रिका का शीर्षक "वातायन" से बदलकर "तोशाली" करने एवं पत्रिका को किसी विषय-वस्तु (थीम) पर आधारित करने का निर्णय इसे निसंदेह और भी बेहतर बनाएगा।

इस वर्ष अर्धवार्षिक हिंदी पत्रिका "तोशाली" के 107वें अंक की विषय-वस्तु "ओड़िशा की जनजातियां" रखने का उद्देश्य पाठकों को ओड़िशा की समग्र सभ्यता में से एक अंश से साक्षात्कार करवाना है ताकि राजभाषा हिंदी का हाथ थामकर हम अपनी सभ्यता, संस्कृति एवं धरोहर को भी गर्व के साथ साझा करें। इसमें हमारे पत्रिका प्रकाशन परिवार के मुख्य संरक्षक, संरक्षक, संपादक मंडल एवं सभी रचनाकारों का योगदान अतुलनीय है।

"तोशाली" के इस अंक एवं आगामी अंकों के निरंतर प्रकाशन हेतु मेरी शुभेच्छा सदैव राजभाषा हिंदी की प्रगति पर केंद्रित रही है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि "तोशाली" के 107वें अंक को सभी सुधीजनों द्वारा सराहे जाने के साथ-साथ राजभाषा हिंदी के प्रयोग को सकारात्मक गति मिलेगी।

मनोरंजन पाणिग्राही

(मनोरंजन पाणिग्राही)

वरिष्ठ लेखा अधिकारी (राजभाषा)

संपादकीय...

सभ्यता, संस्कृति, कला एवं नवीनतम प्रयासों की सतरंगी आभा विखेरती "तोशाली"

किसी भी कार्यालय की गृह पत्रिका उस कार्यालय की आंतरिक गतिविधियों, कार्यों एवं कार्मिकों की जानकारी मात्र नहीं होती है बल्कि रचनात्मकता, प्रतिभा एवं गहन विचारों का चोला ओढ़े उस कार्यालय में राजभाषा हिंदी की प्रगति को भी दर्शाती है। इतना ही नहीं वह पत्रिका संबंधित राज्य, वहां की सभ्यता, संस्कृति, विकास एवं नवीनतम प्रयासों की सतरंगी आभा विखेरती पाठकों में कौतुहल एवं जिज्ञासा पैदा कर उसे और करीब से जानने के लिए मानो आमंत्रित करती हो। ऐसे में यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि पत्रिका का शीर्षक उस आमंत्रण पत्र की भांति अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है जिसे पढ़कर शुभचिंतक स्वतः चले आते हैं। इसी क्रम में प्रधान महालेखाकार (लेखा एवं हकदारी), ओड़िशा, भुवनेश्वर की राजभाषा हिंदी अर्धवार्षिक पत्रिका का शीर्षक "वातायन" से "तोशाली" किया जा रहा है ताकि भाषा, सीमा, जाति एवं संप्रदाय के बंधनों से परे एकता के सूत्र में बांधने वाली हमारी राजभाषा हिंदी के द्वारा सभी केंद्रीय सरकारी कार्यालयों को ओड़िशा की समृद्ध कला, संस्कृति, विकास एवं नवाचार की झलक मिल सके।

पौराणिक कथाओं, रहस्यों, ओड़िशी सभ्यता, संस्कृति एवं कला के ताने-बाने में गुथे हुए ऐतिहासिक शहर भुवनेश्वर की अपनी अलग ही पहचान है। सदियों से अध्यात्म, हरियाली, धर्म, शांति एवं अहिंसा का संदेश देती ओड़िशा की पवित्र धरती न सिर्फ मंदिरों के लिए बल्कि शिष्टाचार, स्वच्छता एवं खुली बाहों से सबका स्वागत करने के लिए भी प्रसिद्ध है। भुवनेश्वर शहर को मूल रूप से तोशाली नाम से जाना था जिसका अर्थ है – "तृप्ति"। जिस प्रकार किसी वांछित इच्छा की पूर्ति होने पर आत्मा तृप्त हो जाती है, ठीक उसी प्रकार प्रकृति की गोद में बसे ओड़िशा में भी आस्था, पर्यटन, कला, ज्ञान एवं शोध के पुजारियों को तृप्ति प्राप्त होती है। तोशाली पूर्वी भारत में वर्तमान ओड़िशा राज्य का एक प्राचीन शहर था। यह कलिंग

साम्राज्य के पूर्वी प्रांत की राजधानी थी जहाँ जैन एवं बौद्ध धर्मों के साथ-साथ अन्य धर्मों एवं मान्यताओं का भी उत्थान हुआ। कहा जाता है कि यहां के मंदिरों के पत्थरों से भी ईश्वर, अध्यात्म एवं आस्था का संगीत सुनाई देता है, फिर चाहे वह श्री जगन्नाथ मंदिर हो, लिंगराज मंदिर या कोणार्क सूर्य मंदिर। यहां की जनजातियां एवं वन्य-जीवन भी किसी रहस्य से कम नहीं। इस वर्ष "तोशाली" पत्रिका का 107वां अंक "ओड़िशा की जनजातियां" विषय-वस्तु पर आधारित है जिसके द्वारा यहां की जनजातियों के संघर्षपूर्ण जीवन एवं परंपराओं को परत-दर-परत उजागर करने का प्रयास किया गया है।

हमें पूर्ण विश्वास है कि प्रधान महालेखाकार एवं वरिष्ठ उप महालेखार (प्रशा.) के संरक्षण एवं मार्गदर्शन में इस कार्यालय द्वारा प्रकाशित अर्धवार्षिक हिंदी पत्रिका "तोशाली" का 107 वां अंक हिंदी की अविरल यात्रा में निसंदेह अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी। पत्रिका के इस अंक के प्रति आपके सुझावों का उत्सुकता से स्वागत है ताकि आगामी अंकों को और भी बोधगम्य एवं बेहतर बनाया जा सके।

रूपा कुमारी

(रूपा कुमारी)

वरिष्ठ अनुवादक



भारत सरकार
गृह मंत्रालय
राजभाषा विभाग

(सदैव ऊर्जावान; निरंतर प्रयासरत)

राजभाषा प्रतिज्ञा

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 और 351 तथा राजभाषा संकल्प 1968 के आलोक में हम केंद्र सरकार के कार्मिक यह प्रतिज्ञा करते हैं कि अपने उदाहरणमय नेतृत्व और निरंतर निगरानी से; अपनी प्रतिबद्धता और प्रयासों से प्रशिक्षण और प्राइज़ से अपने साथियों में राजभाषा प्रेम की ज्योति जलाये रखेंगे, उन्हें प्रेरित और प्रोत्साहित करेंगे; अपने अधीनस्थ के हितों का ध्यान रखते हुए; अपने प्रबंधन को और अधिक कुशल और प्रभावशाली बनाते हुए राजभाषा-हिंदी का प्रयोग, प्रचार और प्रसार बढ़ाएंगे हम राजभाषा के संवर्द्धन के प्रति सदैव ऊर्जावान और निरंतर प्रयासरत रहेंगे।

जय राजभाषा ! जय हिंद !

आपके पत्र

कार्यालय महानिदेशक, लेखापरीक्षा उद्योग एवं कार्पोरेट कार्य

ए.जी.सी.आर. भवन, आईपी एस्टेट नई दिल्ली
महोदय/महोदया,

उपर्युक्त विषय से संबंधित आपके कार्यालय की हिंदी पत्रिका वातायन के 106 वें अंक की ई-प्रति प्राप्त हुई सहर्ष धन्यवाद। पत्रिका में समाविष्ट सभी लेख, कविताएं, उत्कृष्ट एवं ज्ञानवर्धक हैं। विशेषकर श्री यशराज मिश्रा का लेख “गया जी का ज्ञान और मोक्ष की स्थली”, सुश्री रुपा कुमारी का लेख “चौथा बंदर” और श्री अभिषेक कुमार की कविता “वह पेंड़ पुराना” आदि उल्लेखनीय हैं एवं सराहनीय हैं।

पत्रिका का मुख्य पृष्ठ अत्यंत आकर्षक है। पत्रिका के रचनाकारों एवं संपादक मंडल को संपादन तथा प्रकाशन हेतु हार्दिक बधाई एवं पत्रिका के उज्ज्वल भविष्य के लिए हमारे कार्यालय की ओर से हार्दिक शुभकामनाएँ।

संपादक एवं हिंदी अधिकारी

प्रधान महालेखाकार (लेखापरीक्षा-1) का कार्यालय, ओडिशा, भुवनेश्वर

महोदय/महोदया,

आपके कार्यालय की पत्रिका वातायन के 106वें अंक की प्राप्ति हुई, सहर्ष धन्यवाद।

पत्रिका के प्रथम एवं अंतिम पृष्ठ आकर्षक हैं। पत्रिका की रचनाओं का संकलन अत्यंत ही उत्कृष्ट कोटि का है। पत्रिका की समस्त रचनाएं पठनीय, ज्ञानवर्धक एवं संग्रहणीय हैं। विशेष रूप से मनोरंजन पाणिग्राही का लेख मन की गीता, सुश्री रुपा कुमारी का लेख चौथा बंदर, सुश्री धृति रानी की कविता प्रकृति का गान तथा श्री अजय कुमार साव का लेख मन के सवाल आदि सराहनीय हैं।

पत्रिका के संपादन एवं संकलन हेतु संपादक मण्डल को साधुवाद तथा पत्रिका के उज्ज्वल भविष्य एवं प्रगति के लिए हार्दिक शुभकामनाएं।

हिंदी अधिकारी

प्रधान निदेशक रक्षा-वाणिज्यिक लेखापरीक्षा का कार्यालय, बैंगलोर

महोदय/महोदया,

आपके कार्यालय की हिंदी पत्रिका वातायन का 106 वां अंक की प्रति इस कार्यालय को सहर्ष प्राप्त हुई है। पत्रिका में सम्मिलित सभी रचनाएं पठनीय एवं प्रशंसनीय हैं। विशेष रूप से श्री रवीन्द्र कुमार दास का लेख 'एक वायु सैनिक की जीवन गाथा', श्री अभिषेक कुमार का लेख 'वह पेंड़ पुराना', सुश्री धृति रानी की लेख 'प्रकृति का गान' सुश्री रुपा कुमारी का लेख 'चौथा बंदर' एवं श्री अजय कुमार साव का लेख 'मन के सवाल' आदि रोचक व ज्ञानवर्धक हैं विभिन्न प्रकार की रचनाओं से सजी आपकी पत्रिका हिंदी कार्यान्वयन की दिशा में एक स्वर्णिम प्रयास है। पत्रिका के सफल प्रयास हेतु शुभकामनाएं।

धन्यवाद,

हिंदी अधिकारी,

कार्यालय महालेखाकार (लेखा एवं हकदारी) हरियाणा, लेखाभवन चंडीगढ़

महोदय/महोदया,

आपके कार्यालय के पत्रांक 10.06.2024 के द्वारा आपके कार्यालय द्वारा प्रकाशित राजभाषा हिंदी पत्रिका वातायन के 106वें अंक की ई-प्रति सधन्यवाद प्राप्त हुई। पत्रिका में समाविष्ट सभी रचनाएं उच्चस्तरीय, ज्ञानवर्धक एवं प्रशंसनीय हैं। पत्रिका में समाविष्ट श्री मनोरंजन पाणिग्राही का लेख 'मन की गीता', श्री अभिषेक कुमार का लेख 'गोटीपुआ: ओडिशा का एक नृत्य-नाट्य', सुश्री रुपा कुमारी के लेख 'चौथा बंदर' एवं श्री दीपक यादव का लेख 'ज्ञान कुंभ' बहुत ही ज्ञानवर्धक लेख हैं।

इसके अतिरिक्त श्री रणवीर कुमार की कविता 'तुम इतना तेज जो गाड़ी चला रहे हो'। श्री अभिषेक कुमार की कविता 'वह पेंड़ पुराना', श्री विनोद कुमार की कविता 'तुम जैसा कैसे बन जाऊँ' एवं श्री अजय कुमार साव की कविता 'मन के सवाल' पठनीय हैं। पत्रिका के श्रेष्ठ संकलन हेतु संपादक-मंडल बधाई के पात्र हैं। पत्रिका के उज्ज्वल भविष्य हेतु हार्दिक शुभकामनाएँ।

यह पत्र वरिष्ठ उप महालेखाकार(प्रशा.) महोदय के अनुमोदन से भेजा जा रहा है।

हिंदी अधिकारी

**कार्यालय प्रधान मुख्य आयकर आयुक्त, ओड़िशा,
आयकर भवन, राजस्व विहार, भुवनेश्वर
महोदय/महोदया,**

आपकी पत्रिका का 106वें अंक प्रेषित करने के लिए धन्यवाद। रंगारंग आवरण पृष्ठ वाली इस पत्रिका में सम्मिलित लेख, कहानियाँ, कविता भावपूर्ण एवं ज्ञानवर्धक है। जहाँ श्री मनोरंजन पाणिग्राही जी का 'मन की गीता' रचना सारगर्भित एवं पठनीय है वहीं 'वह पेंड पुराना' व 'मन के सवाल' मर्मस्पर्शी बन पड़ी है। कहानी 'चौथा बंदर' और 'आदर्श भी और शिक्षक भी' अच्छे लगे। पत्रिका के पृष्ठों की साज-सज्जा सराहनीय है। इस वार्षिक हिंदी पत्रिका को पढ़ कर अधिकारियों एवं कर्मचारियों को हिंदी में काम करने में रुचि बढ़ेगी। मैं सभी रचनाकारों, संपादक मंडल एवं पत्रिका प्रकाशन से जुड़े सभी लोगों को बधाई देता हूँ।

**सहायक निदेशक (राजभाषा) कृते प्रधान
मुख्य आयकर आयुक्त, भुवनेश्वर (ओड़िशा)**

**प्रधान महालेखाकार (लेखापरीक्षा-॥) का
कार्यालय, केरल, तिरुवनंतपुरम**

महोदय,

आपके कार्यालय द्वारा अर्धवार्षिक हिंदी पत्रिका वातायन के 106वें अंक की ई-प्रति प्राप्त हुई, तदर्थ धन्यवाद।

पत्रिका की साज-सज्जा तथा आवरण पृष्ठ बहुत ही आकर्षक और सुंदर है। पत्रिका में प्रकाशित सभी रचनाएं सभी रचनाएं मनोरंजक व ज्ञानवर्धक हैं। विशेषकर, श्रीमती शांतिलता सेठी द्वारा रचित लेख 'दिल है कि मानता नहीं' एवं श्री अभिषेक कुमार द्वारा रचित कविता 'वह पेंड पुराना' और श्री अजय कुमार साव द्वारा रचित कविता 'मन के सवाल' अत्यंत प्रशंसनीय हैं। पत्रिका के सफल प्रकाशन हेतु संपादक मंडल को सहस्र बधाईयाँ एवं शुभकामनाएँ।

वरिष्ठ लेखा अधिकारी, हिंदी कक्ष

**प्रधान महालेखाकार (लेखा एवं हकदारी) का
कार्यालय, ओड़िशा, पुरी शाखा**

महोदय,

आपकी हिंदी पत्रिका वातायन के 106वें अंक की प्रति की प्राप्ति हुई। धन्यवाद।

वातायन उत्कृष्ट रचनाओं का सुंदर संकलन है। पत्रिका के मुख्य पृष्ठ सहित अन्य कार्यक्रमों के चित्र अत्यंत सुखद व अनुभूतिपूर्ण होने के साथ-साथ पत्रिका को और अधिक सुंदरता प्रदान कर रहे हैं। पत्रिका में निहित संपूर्ण रचनाएं पठनीय रोचक, ज्ञानवर्धक एवं महत्वपूर्ण संदेशों से परिपूर्ण है। इनमें 'चौथा बंदर', 'झाड़ू करती बच्ची', 'विवाह का नया रूप', 'मन के सवाल' एवं 'प्रकृति का ज्ञान', विशेष अच्छी हैं। आशा है कि यह पत्रिका आगे भी अपने रोचक विषयों से पाठकों का ज्ञानवर्धन एवं राजभाषा के प्रचार-प्रसार में सार्थक मंच उपलब्ध कराती रहेगी।

पत्रिका के संपादक मंडल के सभी सदस्यों एवं पत्रिका के उज्ज्वल भविष्य की हार्दिक शुभकामनाएं।

वरिष्ठ लेखा अधिकारी, राजभाषा कक्ष

कार्यालय महालेखाकार (लेखापरीक्षा-॥)

**म.प्र., 53, अरेरा हिल्स, होशंगाबाद रोड,
भोपाल**

महोदय/महोदया,

उपर्युक्त संदर्भित पत्र के साथ आपके कार्यालय द्वारा वातायन के 106वें अंक की ई-प्राप्ति प्राप्त हुई, तदर्थ धन्यवाद। पत्रिका में सभी रचनाएं प्रशंसनीय है विशेष तौर पर ईश्वर विश्वास, वंदना, मन की गीता, तुम इतना तेज जो गाड़ी चला रहे हो, चौथा बंदर, आदर्श भी और शिक्षक भी आदि रचनाएं सारगर्भित एवं सराहनीय हैं।

पत्रिका की साज-सज्जा उत्तम है। कार्यालयीन चित्रों ने पत्रिका की सुंदरता को और निखारा है। पत्रिका के कुशल तथा सफल संपादन हेतु संपादक मण्डल को हार्दिक बधाई। पत्रिका के निरंतर उज्ज्वल भविष्य हेतु शुभकामनाएं।

वरिष्ठ लेखा अधिकारी/हिंदी कक्ष

**कार्यालय प्रधान (लेखापरीक्षा- I)
पश्चिम बंगाल-कोलकाता**

महोदय/महोदया,

आपके कार्यालय का पत्रांक-रा.भा.अनु./वा.प्र.एवं मा./12/2024-25/88, दिनांक 10.06.2024 के माध्यम से आपके कार्यालय द्वारा प्रकाशित हिंदी पत्रिका वातायन के 106वें अंक की प्राप्ति हुई। धन्यवाद। पत्रिका का आवरण पृष्ठ एवं आकर्षक है। वातायन में समाहित सभी रचनाएं रोचक, प्रशंसनीय एवं ज्ञानवर्धक हैं। विशेष रूप से श्री मनोरंजन पाणिग्राही की रचना 'मन की गीता', सुश्री रूपा कुमारी की रचना 'चौथा बंदर', श्री महेंद्र कुमार शतपथी की रचना 'सुकुमार की डायरी का एक पन्ना', श्री अजय कुमार साव की रचना 'मन के सवाल', सुश्री सोनी कुमारी साव की रचना 675वें गणतंत्र दिवस पर कर्तव्य पथ समारोह में' इत्यादि सराहनीय हैं। आशा है कि यह पत्रिका हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

पत्रिका के सभी रचनाकारों एवं संपादक मंडल को पत्रिका के सफल प्रकाशन के लिए बधाई एवं पत्रिका के उत्तरोत्तर प्रगति की शुभकामनाएं।

हिंदी अधिकारी

**कार्यालय प्रधान महालेखाकार
अरुणांचल प्रदेश**

महोदय/महोदया,

आपके कार्यालय द्वारा प्रकाशित हिंदी पत्रिका 'वातायन' के 106वें अंक की प्राप्ति हुई। इसके लिए सहर्ष धन्यवाद। इस पत्रिका में प्रकाशित सभी लेख, कविताएं एवं रचनाएं उत्कृष्ट, पठनीय एवं ज्ञानवर्धक हैं। पत्रिका का आवरण पृष्ठ एवं कार्यालयीन गतिविधियों के छायाचित्र आकर्षक हैं।

श्री मनोरंजन पाणिग्राही की 'मन की गीता', श्रीमती/सुश्री रूपा कुमारी की 'चौथा बंदर', श्री अभिषेक कुमार की 'गोटीपुआ: ओड़िशा का एक नृत्य-नाट्य', एवं श्री रंजीत सिंह की 'विवाह का नया रूप' रचनाएं विशेष रूप से सराहनीय हैं।

पत्रिका रूचिपूर्ण एवं उपयोगी है। पत्रिका के सभी रचनाकारों एवं संपादक मंडल को पत्रिका के सफल प्रकाशन के लिए बहुत-बहुत बधाई एवं पत्रिका की उत्तरोत्तर प्रगति के लिए शुभकामनाएं।

वरिष्ठ लेखा अधिकारी (राजभाषा)

**कार्यालय प्रधान महालेखाकार (लेखापरीक्षा)
छत्तीसगढ़, रायपुर**

महोदय/महोदया,

आपके कार्यालय द्वारा प्रकाशित हिंदी पत्रिका 'वातायन' के 106वें अंक की ई-प्रति पत्रिका प्राप्त हुई। पत्रिका का यह अंक भेजने हेतु आपका हार्दिक आभार। भेजी गई पत्रिका में संकलित सभी रचनाएं पठनीय, रुचिकर एवं प्रेरणादायक हैं। इस पत्रिका में सामाजिक जीवन से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर प्रेरक एवं ज्ञानवर्धक लेख लिखे गए हैं।

राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार में यह पत्रिका महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। सभी रचनाकारों एवं संपादक मण्डल को पत्रिका के सफल प्रकाशन के लिए हार्दिक बधाई एवं पत्रिका की उत्तरोत्तर प्रगति के लिए शुभकामनाएं।

वरिष्ठ लेखा अधिकारी, हिंदी कक्ष

**कार्यालय: प्रधान महालेखाकार (लेखापरीक्षा),
हरियाणा**

महोदय/महोदया,

पत्र संख्या: सं.रा.भा.अनु./वा.प्र एवं मा./12/2024-25/79 दिनांक: 10.06.2024 के द्वारा आपके कार्यालय की हिंदी पत्रिका "वातायन" के 106वें अंक की ई-प्रति प्राप्त हुई है। एतदर्थ धन्यवाद। पत्रिका में समाहित सभी रचनाएं उच्च कोटि की हैं। पत्रिका का आवरण पृष्ठ भी अति सुंदर है। "वंदना", "गया जी-ज्ञान और मोक्ष की स्थली", "जिंदगा या जहर", "आदर्श भी और शिक्षक भी", "दिल है कि मानता नहीं" आदि रचनाएं विशेष रूप से ज्ञानवर्धक, पठनीय और रुचिकर हैं। उत्तम संयोजन एवं संपादन के लिए संपादक मंडल बधाई के पात्र हैं।

पत्रिका की उत्तरोत्तर प्रगति एवं उज्ज्वल भविष्य के लिए हार्दिक शुभकामनाएं।

हिंदी अधिकारी, हिंदी कक्ष

अनुक्रमणिका

क्र. सं. शीर्षक	रचनाकार	पृष्ठांक
1. ओड़िशा की समृद्ध जनजातीय परंपरा : एक परिचय	श्री विकास कुमार	15
2. कर्म प्रधान विश्व करि राखा	श्री संजय कुमार	18
3. गंजाम जिले की जनजातियां	श्री मनोरंजन पाणिग्राही	19
4. आदिवासियों का कर्मा पर्व	श्री चार ओराम	23
5. प्रथम मानव एवं जंगल के राजा : बैगा जनजाति	सुश्री रूपा कुमारी	25
6. वन, वनवासी तथा पॉलिथीन की घास और कंकरीट के जंगल	श्री अभिषेक कुमार	29
7. ओड़िशा की ऐतिहासिक जनजाति : बोंडा	श्री प्रिय चंदन कुमार	33
8. बिरहोर जनजाति	श्री शिवानंद	36
9. ओड़िशा के आदिवासी स्वतंत्रता सेनानी	श्री महेंद्र कुमार शतपथी	39
10. खड़िया: ओड़िशा की एक प्रमुख जनजाति	श्री अजय कुमार साव	40
10. ओड़िशा के विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह	श्री गौरव यादव	44
12. चुकटिया भुंजिया: विशेष रूप से कमजोर एक जनजातीय समूह	सुश्री सुनीता देवी	48
13. बोंडा जनजाति	श्री विनोद कुमार	52
14. आदिवासी : क्या हम अलग हैं ?	सुश्री शुभश्री पात्रा	54
15. वसुधैव कुटुंबकम्	श्री दीपक यादव	55
16. नारीवाद	श्री आदर्श कुमार	59
17. ओड़िशा की जनजातियाँ	श्री कुमार भास्कर	62
18. प्राथमिक चिकित्सा (फर्स्ट एड) और उत्तरजीविता कौशल (सर्वाइवल स्किल)	श्री रबिन्द्र कुमार दास	66
19. ओड़िशा के डोंगरिया कोंध	श्रीमती शांतिलता सेठी	70





श्री विकास कुमार

उप महालेखाकार (लेखा एवं वीएलसी)

ओड़िशा की समृद्ध जनजातीय परंपरा : एक परिचय

सच पूछिए तो भारत विविधताओं का देश है जहाँ अनेक जाति-जनजाति, भाषा-भाषी के लोग एक साथ निवास करते हैं। आर्य-द्रविड़ जन के साथ-साथ भारत में मूलवासी, जिन्हें आदिवासी, वनवासी, गिरिजन, आदिम जाति, जनजाति, अनुसूचित जनजाति आदि कई नामों से जाना जाता है, भारतीय सभ्यता, संस्कृति के अभिन्न अंग रहे हैं। प्राचीन भारतीय धर्मग्रंथों यथा वेद-पुराण, रामायण, महाभारत आदि में भी किरात, यक्ष, भील, नागा, मुंडा, निषाद, शबर आदि नामों से इनका उल्लेख मिलता है। ये सभी मुख्यतः भारतवर्ष में विभिन्न पहाड़ियों, वन-क्षेत्रों में रहते आए हैं और आज भी ये अनवरत अपनी आजीविका का स्वतंत्र रूप से पालन कर रहे हैं।

भारत में जनजातीय आबादी के संदर्भ में ओड़िशा राज्य एक अन्यतम राज्य है। पूर्व में कलिंग, उत्कल, कोशल आदि से जाने जानेवाले इस राज्य में पूरे भारतवर्ष की तकरीबन नौ (9) प्रतिशत जनजातीय आबादी रहती है। यह आबादी पूरे ओड़िशा राज्य की आबादी का एक चौथाई (23 प्रतिशत) है। यहाँ देशभर की कुल 432 जनजातियों में से 62 जनजातियाँ निवास करती हैं। जनसंख्या की दृष्टि से ओड़िशा, मध्यप्रदेश एवं महाराष्ट्र के बाद तीसरी सर्वाधिक जनजातियों की आबादी

वाला राज्य है।

ओड़िशा में निवास करने वाली 62 जनजातियों में से 13 जनजातियों को “विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह” (Particularly Vulnerable Tribal groups-PVTG) के रूप में जाना जाता है जो विलुप्त होने की कागार पर है। शिक्षा, स्वास्थ्य जैसी सुविधाओं से दूर इनकी घटती जनसंख्या के कारण इनपर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। ओड़िशा के बिरहोर, बोंडा प्रजा, चुटकिया भुंजिया, दीदाई, डोंगरिया कांधा, हिल खरिया, जुआंग, कुटिया कांधा, लंजिया सोउरा, लोधा, मनकिरदया, पौडी भुंइया ओर सोउरा जनजाति इस श्रेणी में आते हैं जो संबलपुर, सुंदरगढ़, रायगढ़, कंधमाल,



कालाहांडी, कोरापुट, गजपति, बरगढ़, बोलांगीर, मयुरभंज, कटक, देवगढ़, क्यौंझर, झारसुगुड़ा जिले के अंतर्गत मुख्यतः निवास करते हैं। ये सभी जनजातियां अपने पारंपरिक रीति-रिवाज, अनुष्ठान, लोक नृत्य-संगीत, वेश-भूषा का पालन सदियों से करते चले आ रहे हैं। विभिन्न शासकों, राजा-रजवाड़ों द्वारा इनके रीति-रिवाजों में कभी भी हस्तक्षेप नहीं किया जाता रहा। फलतः ये परंपरागत नियमों, रिवाजों का अनवरत अनुपालन करते रहे हैं।

इसी क्रम में कुछ जनजातियों की चर्चा करना अप्रासंगिक नहीं होगा। ओड़िशा में विद्यमान जनजातियों में बोंडा जनजाति को सबसे प्राचीनतम जनजातियों में शुमार किया जाता है जो अपनी पृथक् परंपरा एवं रीति-रिवाजों के लिए जाने जाते हैं। इनमें आज भी “वस्तु विनिमय प्रणाली” (Barter system) मौजूद है जिसका प्रयोग ये कृषि उपजों एवं नित्य प्रति व्यवहृत सामानों का आपस में आदान-प्रदान के लिए करते हैं। इनमें एक बात यह भी है कि इनकी महिलाएं अपेक्षाकृत कम उम्र के युवाओं से विवाह करना पसंद करती हैं ताकि वृद्धावस्था में इनका जीवनोपार्जन वे कर सकें।

इसी प्रकार कांधा जनजाति ओड़िशा की सर्वाधिक जनसंख्या वाली जनजाति है जो पृथ्वी को माँ के रूप में पूजते हैं। इनकी एक समृद्ध सांस्कृतिक विरासत है। ये सुदूर पहाड़ों की ढलाने पर रहना पसंद करते हैं। इसी तरह सोउरा जनजाति में, जिनके पुरुष पहाड़ों पर चढ़ने, शिकार करने में निपुण होते हैं, सर्वदा अपने कंधों पर कुल्हाड़ी रख शिकार हेतु लंबी दूरी भी तय

कर लेते हैं। इस जनजाति के रेखाचित्र ओड़िशा के अनेक शहरों के सार्वजनिक दीवारों में उकेरे मिल जाते हैं जिसमें आखेट के दृश्य को बारीकी से चित्रित किया जाता है।

अगर प्रगतिशील जनजातियों की बात करें तो “उराँव” जनजाति सबसे आगे आती है जो कृषि क्षेत्र में आधुनिक तकनीकों का, खाद एवं उत्तम, उन्नत बीजों का प्रयोग करते हैं। आर्थिक रूप से बेहतर स्थिति में इस जनजाति में पुनर्विवाह, तलाक आदि उदारता देखी जा सकती है। विभिन्न प्रकार की टोकरियों के निर्माण में निपुण जुआंग जनजाति एक विशिष्ट जनजाति है जो हिंदू धर्म से सन्निकटता के चलते विभिन्न देवताओं की पूजा-अर्चना करते हैं।

ओड़िशा में निवास करने वाली जनजातियों के विषय में विस्तृत जानकारी हेतु एक सुंदर संग्रहालय का निर्माण राजधानी भुवनेश्वर में किया गया है जिसमें सामाजिक परिवेश,



दैनिक उपयोग में इस्तेमाल की जाने वाली वस्तुएं, कला-कृतियों, स्त्री-पुरुषों के परिधान, आभूषण, आखेट में प्रयुक्त विभिन्न हथियार, मनोरंजन हेतु विभिन्न वाद्य यंत्र आदि अनेक चीजों को बड़ी खूबसूरती से प्रदर्शित किया गया है। मेरे

तोशाली

भुवनेश्वर में पदस्थापना के बाद मैंने सर्वप्रथम इस संग्रहालय का अवलोकन किया एवं यहां मौजूद प्रदर्शनी को देख मुझे यह अहसास हुआ कि विभिन्न मानव जातियां अपने विकास क्रम में किन संघर्षों से नित्यप्रति जुझतीं रहीं हैं और उन्होंने सदियों से अपने पुरखों की परंपरा को आज भी जीवंत रखा है।

उत्कल की पावन धरा पर आज भी मानव जाति, जीव-जंतु जगत के विविध रूपों का अपनी विकास यात्रा में विभिन्न चरणों में जीवंत उपस्थिति, न सिर्फ आगन्तुकों,

पर्यटकों को मोहित करती है, बल्कि भारतवर्ष की विविधताओं की संपूर्ण एवं मनोहरी झांकी के सजीव दर्शन हेतु सभी संवेदनशील मानवता को आकर्षित करती है। वस्तुतः पाषाणकालीन सभ्यता के संग-संग, सनातन सभ्यता, वैश्विक तकनीकी विकास के दौर में आधुनिक सभ्यता का अपूर्व संगम स्थली के रूप में ओड़िशा की विश्वस्तरीय पहचान बन रही है जिसमें यहाँ की जनजातीय जगत के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता।





श्री संजय कुमार

उप महालेखाकार (निधि एवं पेंशन)

कर्म प्रधान विश्व करि राखा

कथा है कि अयोध्या के राजा दशरथ द्वारा अपने यौवन काल में श्रवण कुमार का वध गलती से हो गया था। श्रवण कुमार के पिता ने राजा दशरथ को शाप दिया, जिसके कारण भगवान श्री राम के वनवास काल में राजा दशरथ को पुत्र वियोग में अपने प्राण त्यागने पड़े जबकि मृत्यु के समय राजा दशरथ, त्रिलोक के नाथ भगवान श्री राम के पिता थे। भगवान श्री राम द्वारा बालि का वध छुपकर किया गया था, तो कृष्णावतार की कथा है कि एक बहेलिए द्वारा चलाए गए तीर लगने से ही भगवान श्री कृष्ण की मृत्यु होती है और वे स्वर्गलोक को प्रस्थान करते हैं।

मित्रों, उक्त कथा में यह संदेश है कि जिस भगवान ने स्वयं अपने आप को माफ नहीं किया और पिता को माफ नहीं किया, क्या वह हमें-आपको कभी माफ करेंगे? इस प्रश्न का उत्तर है- कदापि नहीं।

सत्य तो यह है कि भगवान स्वयं ही अपने बनाए नियम-कानून में बंधे हैं, इस संबंध में जब भगवान ने स्वयं को और सगे-संबंधियों को रियायत नहीं दी, तो किसी प्रकार के उपहार - मनुहार (पूजा-पत्री, कर्मकाण्ड इत्यादि) करने से वह किसी को भी नियम-कानून से छूट नहीं देने जा रहा है।

“कर्म-फल” की व्यवस्था को ही सर्वत्र सबसे ऊपर रखा गया है। यदि ऐसा नहीं होता तो पुरुषार्थ करने को कोई तैयार ही क्यों होता और कुकर्मों के दण्ड से बचने के

लिए किसी को आवश्यकता ही क्या होती? यदि प्रार्थना मात्र से ही सारी सुविधाएं मिल जाती तो कठोर परिश्रम के लिए कर्म करने की किसी की इच्छा नहीं होती।

प्रार्थना के समय भगवान से आत्मिक सुख-शान्ति की याचना ही उचित है, उसके साथ भौतिक महत्वाकांक्षा जुड़ जाने से प्रार्थना की महत्ता गिर जाती है। यही कारण है कि इस क्षेत्र में महा-मानव नहीं दिखते हैं या बहुत कम ही दिखते हैं, बल्कि दीनता भरी याचना ही मात्र सुनाई देती है। लोग भगवान से जो भौतिकता मांगते हैं, वह मिल नहीं पाती, क्योंकि गलत जगह पर गलत चीज मांगने से उसका पूरा हो सकना कैसे ही संभव होगा! भौतिक सफलताएं अपनी बाहों एवं हथेलियों से मांगनी चाहिए, अपनी बुद्धि को तेज करते हुए सूझ-बूझ से काम लेना चाहिए। इस प्रकार यदि रास्ते में आने वाली बाधा को सुधार दिया गया तो अभिष्ट प्राप्ति सुनिश्चित होगी। यही कारण है कि नास्तिक लोग जो कभी पूजा-पाठ नहीं करते, फिर भी भौतिक उन्नति के पर्याप्त साधन जुटाते हैं, जबकि प्रायः पूजा-पाठ करने वाले लोग अभाव, दारिद्र्य, निराशा एवं असफलता से घिरे रहते हैं। इसका एक ही कारण है कि जो चीज जहाँ से मांगी जानी चाहिए थी, नहीं मांगी गयी। पराक्रम से जो मांगना चाहिए था, उसकी आवश्यकता ही नहीं समझी गयी। इस भ्रमग्रस्त मनोदशा में सफलता मिलेगी भी तो कैसे, मनोरथ पूरे होंगे भी तो कैसे?

!! हरि ॐ शान्ति !!





श्री मनोरंजन पाणिग्राही

वरिष्ठ लेखा अधिकारी

गंजाम जिले की जनजातियां

ओड़िशा एक समृद्ध और रंगीन जनजातीय परिदृश्य के लिए भारतीय राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के बीच एक अद्वितीय स्थान रखता है। अधिकांश अनुसूचित जनजातियां पहाड़ी और वन्य क्षेत्रों में रहती हैं। उनकी सामाजिक व्यवस्था सरल है और आकांक्षाएं जरूरतों से बहुत अधिक नहीं हैं। यद्यपि ओड़िशा में अनुसूचित जनजातियां भू-ऐतिहासिक कारणों से सामाजिक, शैक्षिक और आर्थिक पिछड़ेपन से ग्रस्त हैं, तथापि उनकी अपनी विशिष्टता और सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश है। स्वतंत्रता के बाद सामाजिक-आर्थिक विकास की प्रक्रिया चल रही है और इसने गति पकड़ ली है।

अनुसूचित जनजाति को अक्सर बोलचाल की भाषा में आदिवासी कहा जाता है। भारतीय गणराज्य के संविधान के अनुपालन में ओड़िशा राज्य आधिकारिक तौर पर कुल 64 अलग-अलग जनजातियों को अनुसूचित जनजातियों के रूप में मान्यता देता है। 64 अनुसूचित जनजातियों में से कई बड़ी अनुसूचित जनजातियों के उपभाग हैं।

अनुसूचित जनजातियों की सूची:

“कोंध” या “कंध” जनसंख्या की दृष्टि से राज्य की सबसे बड़ी जनजाति है। इसकी जनसंख्या लगभग दस लाख है और यह मुख्य रूप से कंधमाल और उसके आस-पास के जिलों जैसे रायगढ़, कोरापुट, बलांगीर और बौध में रहते हैं। आठ लाख से अधिक आबादी वाले “संथाल” मयूरभंज जिले में रहते हैं। एक लाख से अधिक आबादी वाले “हो” लोग मयूरभंज, केउंझर, जाजपुर, बालासोर, भद्रक, संवलपुर, झारसुगुड़ा, सुंदरगढ़ आदि

जिलों में रहते हैं। “किसान” सुंदरगढ़, संवलपुर और क्यौंझर के मुख्य निवासी हैं।

गंजाम जिले में मुख्य रूप से कोंध और सौरा जनजाति रहते हैं।

“कोंध” जनजाति का इतिहास, भाषाएं एवं बोली, प्रमुख त्यौहार, कला एवं संस्कृति:

कोंध ओड़िशा राज्य के गंजाम जिले की पहाड़ियों और जंगलों के निवासी हैं। ये कोंड, कोंध या कोंध भी कहलाते हैं। कोंध कई शताब्दियों से पश्चिम, उत्तर और पूर्व की ओर के ओड़िया भाषी तथा दक्षिण की ओर के तेलुगू भाषी समूहों के संपर्क में हैं। कुछ हद तक उन्होंने अपने पड़ोसियों की भाषाएं और प्रथाएं अपना ली हैं। कोंध जनजाति के इतिहास के बारे में कोई ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है, ऐसा माना जाता है कि कोंध जनजाति की उत्पत्ति द्रविड शब्द “कोंड” से हुई है जिसका अर्थ “पर्वत” है। कोंध जनजाति मुख्य रूप से ओड़िशा और आंध्रप्रदेश के निवासी हैं जो लगभग 200 वर्षों पहले ओड़िशा से आकर छत्तीसगढ़ में बसे। कोंध जनजाति एक प्रमुख आदिवासी समुदाय है जो अपनी संस्कृति, भाषा-शैली एवं परंपराओं के लिए प्रसिद्ध है।

कोंध जनजाति की कोई मुख्य भाषा नहीं है। इनकी बोली “कोंधी” है, जिसे कुई बोली भी कहा जाता है। कोंधी भाषा उनके संवादों, गीतों, कहानियों एवं परंपरागत संगीत में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इनके घर सामान्यतः मिट्टी के, छत खपरैल एवं बांस या लकड़ी के बने होते हैं। घर में अनाज रखने की कोठी होती है। इसके साथ-साथ अन्य सामग्री जैसे- धान कूटने का मूसल, अनाज पीसने

का जाता, मिट्टी का चूल्हा, पीतल के बर्तन, कृषि उपकरण, वाद्य यंत्र, मछली पकड़ने का जाल, शिकार के लिए तीर, धनुष एवं भाला आदि इनके पारंपरिक हथियार हैं। इनके वस्त्र विन्यास में पुरुष पंधा (छोटी धोती) और बंडी पहनते हैं और महिलाएं लुगरा पहनती हैं। महिलाएं अपनी सुंदरता के लिए अपने हाथ, पैर, टुंडी, माथे आदि पर गोदना गुदवाती है। महिलाएं नाक में फुल्ली, कान में



खिनवा, गले में सुरडा, रूपया या काँच के मानकों की माला, हाथों में चूड़ियां एवं पटा आदि गहने पहनती हैं। ये सभी गहने गिलट या नकली चांदी या पीतल के होते हैं।

कोंध जनजाति का मुख्य भोजन सामान्यतः स्थानीय अनाज हैं जिसमें जौ, चावल, रागी और मक्का शामिल होते हैं। कोंदो की पेज, बासी भात, दालें (उरद, कुरची

और मुंग की दाल) आदि और कुछ मौसमी साग-सब्जियों और फलों पर आधारित होता है। कोंध समुदाय के लोग पर्यावरण के साथ जुड़े रहते हैं और विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों में मांस, मछली और अन्य जंगली खाद्य पदार्थों का सेवन करते हैं। कोंध जनजाति का प्रमुख आधार कृषि है। उनकी अर्थव्यवस्था का मुख्य स्रोत खेती, वन्य जीवन और चारागाह होता है। कोंध समुदाय के लोग मुख्य रूप से खेती करते हैं जिसमें धान, मडिया, मक्का, ज्वार, बाजरा, उरद, चना और दलहन जैसी फसलें शामिल होती हैं। वन्य फलों का संग्रह करना और उन्हें खाद्य स्रोत के रूप में उपयोग करना भी उनकी गरीबी को कम करने में मदद करता है। वे लाख, तेन्द पत्ता, चारतेन्दु (चिरौंजी), महुआ, शहद एकत्र कर बेचते हैं।

कोंध जनजाति के लोग कई प्रमुख त्यौहार मनाते हैं जो उनकी संस्कृति का महत्वपूर्ण हिस्सा है और उनके समुदाय की एकता और खुशी का प्रतीक है। इनके प्रमुख त्यौहार दशहरा (चावल यात्रा), में नया चावल खाया जाता है, इसे नवाखानी भी कहते हैं, अगहन जात्रा तथा चैत जात्रा (माहुल जात्रा) में नया महुआ खाया जाता है। देवी-देवताओं एवं पूर्वजों की पूजा दशहरा के दिन की जाती है और दीपावली, होली इत्यादि त्यौहार मनाया जाता है। इसके अलावा हरियाली पर्व (बरसात के मौसम में) और छठी पर्व भी मनाया जाता है। कोंध जनजाति का प्रमुख लोक नृत्य विवाह नृत्य, होली नृत्य, जात्रा नृत्य आदि होते हैं। यह नृत्य उनकी सांस्कृतिक धरोहर का महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। उनके लोकनृत्य में विविधता, रंगमंच का जीवंत अनुभव और व्यक्तिगत अभिव्यक्ति का उत्कृष्ट संगम होता है। इन नृत्यों में सांस्कृतिक विरासत की गहरी भावना और सामाजिक संदेश छिपे होते हैं। ये नृत्य ग्रामीण जीवन, प्राकृतिक सौंदर्य, जंगली जीवन और उनके संबंधों को दर्शाते हैं। कोंध जनजाति के कुछ प्रमुख नृत्य हैं “पारोती” और “घुमरिया”। इन नृत्यों में गहरे रंग-बिरंगे पोशाक, ध्वनि, ताल और नृत्य तकनीक का

उपयोग होता है। इनके नृत्यों में गतिशीलता, उत्साह और जीवंतता होती है जो दर्शकों का मनोरंजन करती है और समृद्ध संस्कृति का अनुभव कराती है।

कोंध जनजाति के लोकगीत में विवाह अथवा नृत्य के अवसर पर लोकगीत गाया जाता है। इनके कुछ प्रमुख लोकगीत “हुडकना गीत”, “घूमरिया”, “चंदना चोखा”, “जानमा वारी”, “मुंदरिया” और “तोर बाना दिल” इत्यादि हैं। ये गीत उनकी संगीतमय परंपराओं, स्थानीय धुनों और लोक कथाओं को जीवंत करते हैं। इस जनजाति के लोग विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा करते हैं। इनके प्रमुख देवता “बेला” या “बुरापेंजु” (सूर्य) तथा इनकी पत्नी तारी माता, धरती माता, शीतला माता आदि हैं। कोंध जनजाति में विवाह के लिए मामा या बुआ की लड़की को प्राथमिकता दी जाती है। कन्या के पिता को चावल, दाल, हल्दी, शराब, बकरा या सुअर तथा वधु के कपड़े, 100 से 500 रुपये तक नकद सूक भरना देते हैं। पहले इनमें लड़कों के लिए घांगड़ा घर तथा लड़कियों के लिए घांगड़ी घर गांव के किनारे में पाया जाता था। जहां गांव के युवा लड़के, लड़कियां एकत्र होकर नाचते गाते थे तथा रात्रि विश्राम करते थे। कोंध जनजाति के समाज में विभिन्न परिवारों और समुदायों में विवाह की अलग-अलग प्रक्रिया और रीति-रिवाज होते हैं।

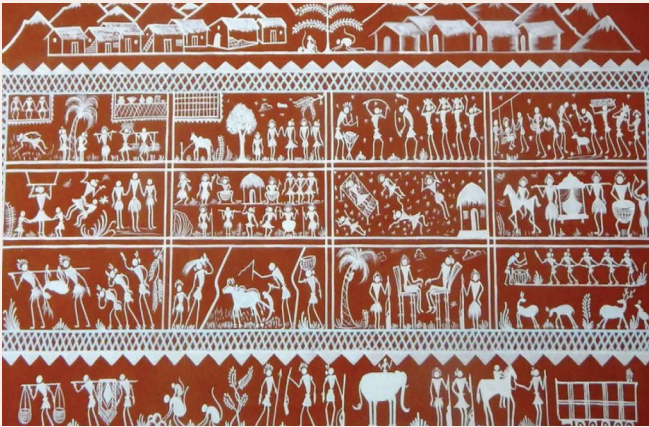
“सौरा” जनजाति का इतिहास, भाषाएं एवं बोली, प्रमुख त्यौहार, कला एवं संस्कृति:

सौरा भारत की सबसे प्राचीन जनजातियों में से एक हैं और हिंदू महाकाव्यों रामायण और महाभारत में उनका उल्लेख मिलता है। रामायण में राम भक्त सवरी और कृष्ण को तीर से घायल करने वाले शिकारी जरा को इसी जनजाति का सदस्य माना जाता है। ऐसा माना जाता है कि भगवान श्री कृष्ण का शरीर लकड़ी के लट्टे के रूप में पुरी के पास समुद्र में बह गया था और पुरी में श्री जगन्नाथ की मूर्ति उसी से बनाई गई है। सौरा जनजाति को सवारा, सबर, सौरा, सोउरा जैसे विभिन्न नामों से पुकारा

जाता है लेकिन यहां सौरा शब्द का प्रयोग समान रूप से किया गया है क्योंकि यह उनकी भाषा से मिलता-जुलता है। वे पश्चिम में बूंदेल खंड से लेकर पूर्व में ओड़िशा तक व्यापक रूप से फैले हुए हैं। वे ओड़िशा के गंजाम, गजपति एवं कोरापुट जिले और आंध्र प्रदेश के श्री काकुलम जिले में पूर्वी घाट के किनारों पर बड़ी संख्या में निवास करते हैं। साआरो शब्द के दो अर्थ प्रतीत होते हैं— एक सागोरिस से लिया गया है, जो कुल्हाड़ी के लिए सिंथियन शब्द है और दूसरा सबा रोये से जो मृत लड़कों को ले जाने के लिए संस्कृत शब्द है। दोनों ही उनके शिकार के आदिम व्यवसाय के साथ हमेशा अपने कंधों पर कुल्हाड़ी तरह से फिट बैठते हैं। महाकाव्यों और पुराणों में राम और जगन्नाथ पंथ जैसे हिंदू धार्मिक नायकों के प्रति उनकी भक्ति का उल्लेख है।

सोउरा को मोटे तौर पर दो आर्थिक वर्गों में विभाजित किया जा सकता है— मैदानी इलाकों के सोउरा जो अपनी गीली खेती या मजदूरी कमाने और जलाऊ लकड़ी बेचने पर निर्भर हैं और पहाड़ी सोउरा जो पहाड़ी ढलानों पर स्थानांतरित और सीढ़ीदार खेती करते हैं। ज्यादातर मामलों में मैदानी इलाकों के सोउरा पड़ोसी गैर-आदिवासी समुदायों के उन्नत वर्ग के अधीन हैं। वे निराई, शौपाई, कटाई और अन्य कृषि कार्यों के समय गैर-आदिवासी भूमि मालिकों को श्रम प्रदान करते हैं और स्थानीय बाजारों में जलाऊ लकड़ी और पत्तों की प्लेटे बेचते हैं। इन सभी कार्यों में पुरुषों के बजाय महिलाएं सक्रिय रूप से भाग लेती हैं और परिवार की आय का बड़ा हिस्सा कमाती हैं। सोउरा गांव का आकार मुख्य रूप से पहाड़ी ढलानों और स्थानांतरित खेती के लिए उपलब्ध वन्य भूमि के विस्तार से नियंत्रित होता है। शिकार, मछली पकड़ने और आत्मरक्षा के लिए तीरंदाजी महत्वपूर्ण है। तार वाले वाद्य यंत्रों को धनुष की तरह धनुष की डोरी सलापा बेल की लताओं से बनाई जाती है। सोउरा में अधिकांश मछली पकड़ने का काम अभी भी धनुष और तीर से किया जाता है।

सौरा चित्रकला सौरा आदिवासियों से जुड़ी दीवार भित्ति चित्रों की एक शैली है। ये पेंटिंग, जिन्हें आइकॉन (या एक्कॉन) भी कहा जाता है, दिखने में वाली पेंटिंग के समान है और सौराओं के लिए धार्मिक महत्त्व रखती है। ये सौराओं के मुख्य देवता इडिटल



(एडिटल भी) को समर्पित है। ये चित्र आदिवासी कथाओं से प्रेरित हैं और इनका आनुष्ठानिक महत्त्व है। लोग, घोड़े, हाथी, सूर्य और चंद्रमा और जीवन का पेड़ इन प्रतीकों में आवर्ती रूपांकन है। प्रतीक मूल रूप से सौरा की एडोब झोपड़ियों की दीवारों पर

चित्रित किए गए थे। चित्रों की पृष्ठभूमि लाल या पीले गेरू मिट्टी से तैयार की जाती है, जिसे फिर कोमल बांस की टहनियों से बने ब्रस का उपयोग करके चित्रित किया जाता है। एक्कॉन प्राकृतिक रंगों और क्रोम का उपयोग करते हैं, जो पीसे हुए सफेद पत्थर, रंगीन मिट्टी और सिंदूर और इमली के बीज, फूल और पत्ती के अर्क के मिश्रण से प्राप्त होते हैं।

विशेष धार्मिक और सांस्कृतिक अवसरों जैसे कि बच्चे के जन्म, फसल, विवाह और नए घर के निर्माण के दौरान आइकन की पूजा की जाती है। आइकन अक्सर नहीं बनाए जाते हैं और मौजूदा आइकन का उपयोग नियमित रूप से सांसारिक अनुष्ठानों के लिए किया जा सकता है। हालांकि एक नए घर के निर्माण के लिए एक आइकन बनवाना जरूरी होता है, जिसे घर के अंदर एक अंधेरे कोने में चित्रित किया जाता है जहां इसके निर्माण के साथ-साथ प्रार्थनाओं का एक विशिष्ट सेट भी होता है। परंपरागत रूप से कुडांग, सौरा के बीच पुजारी वर्ग, आइकन को चित्रित करते थे क्योंकि उनके पास ग्रामीणों को उनमें निहित ध्वनियों के प्रतिकात्मक महत्त्व को समझने की विशेषज्ञता भी थी।



आप जिस तरह बोलते हैं, बातचीत करते हैं, उसी तरह लिखा भी कीजिए। भाषा बनावटी नहीं होनी चाहिए।

- महावीर प्रसाद द्विवेदी



श्री चार ओराम

वरिष्ठ लेखा अधिकारी

आदिवासियों का कर्मा पर्व

इस त्यौहार को भाद्रपद महीने के शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन मनाया जाता है। इसकी एक खासियत यह है कि इस दिन ज्यादातर कुंवारे भाई-बहन उपवास रखकर मन में जो भी मुराद हो उसे पाने के लिए भगवान कर्मा की पूजा करते हैं। उराँव और अन्य आदिवासी जातियों में इस कर्मा पर्व को अपनी रीति-रिवाज और इलाके के आधार पर अपनी सुविधानुसार मनाया जाता है। यह पर्व सामान्यतः दो तरह से मनाया जाता है- 1. भाद्रपद एकादशी और 2. दशाईं करम। भाद्रपद एकादशी को भाद्रपद महीने में और दशाईं करम को दुर्गा पूजा के दौरान मनाया जाता है।

इसमें भोग के तौर पर ज्वार, मटर और उड़द आदि से पूजा की जाती है। जहां तक पर्व पालन करने की बात है यह पर्व भाई-बहन के प्यार से भी संबंध रखता है। पूजा के तौर पर ज्वार जो उगा होता है और चढ़ावन के लिए एक टोकरी में रेत लेकर खाद्य बीज, मकई आदि डालकर रखना पड़ता है, इसे सात दिन तक रखते हैं और इस अवसर पर उन्हें शाकाहारी रहना होता है ताकि जो बीज बोया गया है उसमें से साफ-सुथरा पौधा निकले तथा उसमें कहीं कीड़े-मकोड़े न पैदा हो जाएं।

यह कहानी बिरसा और ननकी नामक एक दम्पति से संबंधित है जिन्हें बहुत दिनों तक संतान की प्राप्ति नहीं होती है। इससे वे काफी परेशान रहते हैं। वे एक दिन अपने खेतों में काम करते-करते थक जाते हैं और सोचते हैं कि एक पेड़ की छांव में थोड़ा विश्राम कर लिया जाए। बातों ही बातों में ननकी करम के पेड़ के नीचे सो जाती है। तब अचानक ननकी को करम देवता का सपना आता है कि “अगर तुम

मेरे पेड़ के तीन डाल (जो कि गांव की सीमा के बाहर का होना चाहिए) को अपने गांव के अखाड़े में या आंगन में रखकर मेरी पूजा करोगी तो तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी”। उसके बाद ननकी यह बात अपने पति बिरसा को बताती है। उसी के आधार पर कर्मा पर्व के दौरान हमारे भाई-बहन बड़े उमंग और जोश में बाजा बजाते, गीत गाते, आनंद से झूमते हुए करम डाल को हमारे पूज्य देवता को न्योछावर कर गांव के अखाड़े में स्थापना करते हैं। इस दौरान लोग पूरे रीति-रिवाज से भरपूर आनंद लेते हुए छोटे-बड़े सभी घरों में नए कपड़े और मिठाइयां आदि बांटते हैं। चूंकि यह त्यौहार साल में एक-दो बार आता है अतः इसका सभी को इंतजार रहता है।

जैसा कि “कर्मा देवता के स्वप्न के आधार पर” वरदान प्राप्त हुआ था बिरसा और ननकी को एक साल बाद जुड़वा बेटे प्राप्त होते हैं। मां-बाप बहुत ही प्यार से अपने बड़े बेटे का नाम कर्मा और छोटे बेटे का नाम धर्मा रखते हैं। इसी कर्मा पर्व के संबंध में हमारे बुजुर्ग लोग हमारी अगली पीढ़ी को कर्मा और धर्मा की कहानी सुनाते हैं जिसे बच्चे ध्यान से सुनते हैं।

गांव के सीमान अखाड़ा में कर्मा पूजा करने से उनको बाल-बच्चे प्राप्त होते हैं और कर्मा का परिवार खुशहाल हो जाता है। तब एक वक्त आता है कि अब परदेश जाकर कुछ धन कमाया जाए। इसके बाद कर्मा काम करने के लिए परदेश चला जाता है और बहुत दिनों के बाद ढेर सारा पैसा कमाकर गांव वापस आता है। उस दिन भाद्रपद माह की वही एकादशी थी जो कर्मा पूजा के दिन थी। कर्मा एक आदमी

से कहता है कि जाओ धर्मा को बोलना उसका भाई कर्मा परदेश से आया है, वह उसे लेने के लिए आ जाए। लेकिन छोटा भाई धर्मा पर्व में मशगूल होने के कारण अपने भाई को लेने नहीं जा पाता है। जब धर्मा उसका स्वागत करने नहीं आता है तो कर्मा गुस्से में आकर करम डाल को उखाड़कर फेंक देता है।

फलस्वरूप उनके परिवार में फिर से दुखों का कहर टूट पड़ता है। चारों तरफ से समस्याएं उन्हें घेर लेती हैं और परेशानियां खत्म होने का नाम नहीं लेतीं। इन सबसे कर्मा पूरी तरह से टूट जाता है और सोचता है कि इससे कैसे बचा जाए। एक दिन कर्मा को देवता की आकाशवाणी आती है कि “तुम अपना दुःख इसलिए झेल रहे हो क्योंकि जब कर्मा पर्व मनाया जा रहा था तब तुमने करम डाल को उखाड़कर फेंक दिया था। अगर तुम उस परम्परा को बनाए रखते हुए फिर से उसका पालन करोगे तो अपने दुःख से छुटकारा पा जाओगे”

तब कर्मा अपनी मनोकामना पूरी करने के लिए निकल पड़ता है, चूंकि उसने कर्मा देवता का अपमान किया था अतः भगवान उसकी परीक्षा लेते हैं। वह जाते-जाते ढूंढता रहता है कि करम की डाल कहां मिलेगी। इस तरह वह चलते-चलते बहुत थक जाता है तो सोचता है कि थोड़ा पानी

पी लिया जाए। लेकिन जैसे ही वह पानी को हाथ लगाता है पानी में ढेर सारे कीड़े-मकोड़े दिखने लगते हैं इससे उसकी परेशानी और बढ़ जाती है। वह भूख से भी तड़प रहा होता है जैसे ही कुछ खाने के लिए फलों को हाथ लगाता है वह भी खराब निकलता है। जाते-जाते कर्मा को रास्ते में एक घोड़ा दिखाई देता है। वह घोड़े से कहता है कि “क्या तुम मुझे कुछ दूर तक लेकर जा सकते हो” जब घोड़े को यह पता चलता है कि इसने करम देवता का अपमान किया है तो घोड़ा भी कर्मा की मदद नहीं करता है। आखिर में कर्मा को एक नदी मिलती है जिसे पार होकर जाना होता है। लेकिन उसके पास कोई साधन नहीं होता है तभी एक मगरमच्छ नजर आता है जो एक जाल में फंसा हुआ रहता है। कर्मा मगरमच्छ से कहता है “क्या तुम मुझे उस पार लेकर चलोगे”। तब मगरमच्छ कहता है “अगर तुम मेरे जाल को खोल दोगे तो मैं तुम्हारी मदद करूंगा”। इस प्रकार कर्मा मगरमच्छ के ऊपर बैठ जाता है। तब मगरमच्छ को यह सत्य कथा पता चलती है कि कर्मा करम देवता का अपमान करके पश्चाताप कर रहा है। कर्मा को उसी नदी के किनारे करम देवता का पेड़ मिल जाता है जिसे वह वापस गांव में लाकर स्थापना करता है। अन्ततः फिर से कर्मा देवता के आशीष से सुशोभित होता है तथा गांव में फिर से खुशहाली छा जाती है।





सुश्री रूपा कुमारी

वरिष्ठ अनुवादक

प्रथम मानव एवं जंगल के राजा : बैगा जनजाति

भारत सदियों से पूरे विश्व में अपनी सभ्यता, संस्कृति, कला एवं मानवता का संदेश वाहक रहा है जहाँ ईश्वर के साथ-साथ प्रकृति की भी पूजा की जाती है; जहाँ धरती, नदियों एवं गायों को “माँ” कहकर संबोधित किया जाता है; जहाँ पीपल के वृक्ष के नीचे बैठकर धर्म, शांति एवं मानवता का संदेश दिया जाता है; जहाँ एक नन्हें से बच्चे की मुस्कुराहट में भी ईश्वर की झलक दिखाई देती है। इस प्रकार ईश्वर, प्रकृति एवं मानव के बीच एक ऐसा तारतम्य स्थापित है जो आज भी पूरे विश्व को “वसुधैव कुटुंबकम्” अर्थात् एक परिवार के समान समझता है। इसी परिवार का एक छोटा-सा अंग है- ओड़िशा राज्य और वहाँ की जनजातियाँ। पर्यावरण का दोहन कर औद्योगिकीकरण को बढ़ावा देने वाले आज के इस दौर में भी ओड़िशा राज्य में निवास करने वाली जनजातियों ने प्रकृति एवं पर्यावरण को संरक्षित कर ओड़िशा को भारत के स्वच्छ एवं सुंदर शहरों की श्रेणी में संजोए रखा है। ओड़िशा में कुल 64 जनजातियाँ निवास करती हैं जो प्रकृति के साथ ताल से ताल मिलाकर विकास के नए-नए आयामों को तलाशने में संलग्न हैं। इन जनजातियों की विशिष्टता यह है कि उन्होंने अपनी सभ्यता एवं संस्कृति को सहर्ष अपनाते हुए ओड़िशा राज्य में पर्यटन, कला,

लघु उद्योगों, प्राकृतिक संसाधनों, कृषि आदि क्षेत्रों में अहम भूमिका निभाई है।

आमतौर पर “जनजाति” शब्द सुनते ही लोगों के मन में आदिवासी अर्थात् जंगलों एवं पहाड़ों पर निवास करने वाले असभ्य, अनपढ़ लोगों की छवि स्वतः ही बन जाती है जो विकास एवं तकनीक से कोसों दूर रहते हैं। वास्तव में “जनजाति” किसी निश्चित भू-भाग में निवास करने वाले उस सामाजिक समुदाय को कहा जाता है जिसकी अपनी अलग सभ्यता, भाषा एवं बोली, वेश-भूषा, खान-पान तथा भौगोलिक स्थिति होती है। वे सामान्यतः प्रकृति-पूजक होते हैं और अपनी सभ्यता के विकास तथा जाति को विलुप्ति से बचाने के उद्देश्य से अपनी वंश-परंपरा का पालन करते हैं। भारत के संविधान में “अनुसूचित



जनजाति" शब्द का प्रयोग हुआ है और इसके लिए विशेष प्रावधान लागू किए गए हैं। 'जनजाति' भारत के आदिवासियों के लिए इस्तेमाल होने वाला एक वैधानिक शब्द है।

संविधान का अनुच्छेद 46 में वर्णित उपबंधों के अनुसार, राज्य समाज के कमजोर वर्गों के शैक्षणिक और आर्थिक हितों विशेषतः अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों का विशेष ध्यान रखेगा और उन्हें सामाजिक अन्याय एवं सभी प्रकार के शोषण से संरक्षित रखेगा। ओडिशा राज्य के 30 जिलों और 314 ब्लॉकों में फैले 64 आदिवासी समुदायों को अनुसूचित जनजातियों के रूप में सूचीबद्ध किया गया है। इन जनजातियों में 74 बोलियाँ प्रचलित हैं। उच्चतम विविधताओं वाले जनजातीय समुदायों की दृष्टि से ओडिशा राज्य का स्थान मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र के बाद आता है। 2011 की जनगणना के अनुसार, वे राज्य की कुल आबादी का 22.85% हिस्सा हैं और देश की कुल जनजातीय आबादी में 9.17% हैं। इन जनजातियों में कोंड, गोंड, बगाता, बैगा, साओरा, संथाल, बोंडो, चेंचू, लोढ़ा, मनकिर्दिया आदि उल्लेखनीय हैं जो अपनी सांस्कृतिक पहचान जैसे भाषा, सामाजिक संगठन एवं अनुष्ठानों, त्यौहारों, अपने परिधान, अलंकरण, कला और शिल्प के माध्यम से अपने समुदाय का प्रतिनिधित्व करते हैं। ओडिशा में संवैधानिक आधार पर अनुसूचित जनजातियों के रूप में सूचीबद्ध कुल 64 जनजातियाँ निम्नलिखित हैं:-

1) बगाता, 2) बैगा, 3) बंजारा, 4) बाथुडी, 5) भोट्टाडा, 6) भुंझिया, 7) भूमिया, 8) भूमिज, 9) भुंजिया, 10) बिंझाल, 11) बिंझिया, 12) बिरहोर, 13) बोंडो, 14) चेंचू, 15) दल, 16) देसुआ भूमिज, 17) धरूवा, 18) दिदाई, 19) गदाबा, 20) गांडिया, 21) घारा, 22) गोंड, 23) हो, 24) होल्वा, 25) जटापु, 26) जुआंग, 27) कंधा, 28) कंधा गौड़ा, 29) कावर, 30) खरिया, 31) खरवार, 32) किसान, नागोसर,

33) कोल, 34) कोलाह, 35) कोल्हा, 36) कोली, 37) कौंडाडोरा, 38) कोरा, 39) कोरुआ, 40) कोटिया, 41) कोया, 42) कुलिस, 43) लोधा, 44) मांडिया, 45) महाली, 46) मनकीडी, 47) मनकिर्दिया, 48) मत्या, 49) मिर्धा, 50) मुंडा, 51) मुंडारी, 52) ओमानट्या, 53) उरांव, 54) परेंगा, 55) परोजा, 56) पेन्टिया, 57) राजुआर, 58) संथाल, 59) साओरा, 60) शबर लोढ़ा, 61) सौंटी, 62) थरुआ, 63) मुका/नुका डोरा, 64) कौंडा रेड्डी।

विलक्षण सभ्यता, संस्कृति, परंपरा एवं रीति-रिवाजों को समेटे हुए ओडिशा की हर जनजाति की अपनी अनूठी पहचान है। इस लेख के माध्यम से ओडिशा की 64 जनजातियों में से बैगा जनजाति की उत्पत्ति, विकास, समस्याओं को करीब से जानना समाज के समक्ष उनके जीवन संघर्ष के विभिन्न पहलुओं को प्रकाशमान करने जैसा है। बैगा जनजाति ओडिशा के अलावा भारत के मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, और झारखंड में बड़ी संख्या में निवास करती है। बैगा जनजाति द्रविड़ समूह की एक आदिम जनजाति है। उनकी उत्पत्ति के संबंध में कोई ऐतिहासिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। लोक-कथाओं के अनुसार सृष्टि की रचना के समय भगवान ब्रह्मा ने दो व्यक्तियों को धरती पर आमंत्रित कर एक को हल एवं दूसरे को टंगिया (कुल्हाड़ी) दी। पहला व्यक्ति हल लेकर खेती करने लगा जिससे वह "गोंड" कहलाया जबकि दूसरा व्यक्ति कुल्हाड़ी के साथ जंगल में जाकर लकड़ी काटने लगा जो "नंगा बैगा" कहलाया। नंगा बैगा के वंशज को आज हम "बैगा जनजाति" के नाम से जानते हैं।

1872 ई० में कैप्टन जे. फोरसिथ द्वारा लिखित पुस्तक "द हाइलैंड आफ सेन्ट्रल इंडिया" में बैगा जनजाति के बारे में उल्लेख मिलता है। दुर्गम पहाड़ियों एवं घने जंगलों में निवास करने वाले बैगा जनजाति के लोगों के

घर घास-फूस एवं मिट्टी के बने होते हैं। उनका रहन-सहन, खान-पान अत्यंत सादा होता है। ये वृक्षों की पूजा करते हैं और जीविकोपार्जन के लिए सामान्यतः प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर रहते हैं। ये हथियार के रूप में तीर, धनुष, कुल्हाड़ी (टंगिया), गुलेल, मछली पकड़ने का जाल और भोजन संग्रहण के लिए बांस की टोकरी, मिट्टी, पीतल एवं एल्युमिनियम के बर्तन का प्रयोग करते हैं। इनकी वेश-भूषा अत्यंत अल्प/अर्ध-नग्न होती है। बैगा पुरुष मुख्य रूप से एक लंगोट तथा सर पर गमछा बांधते हैं और इनके कंधों पर तीर-कमान व कुल्हाड़ी टंगे होते हैं, वहीं बैगा महिलाएं एक साड़ी तथा पोलखा का प्रयोग करते हैं। किन्तु वर्तमान समय में मैदानी क्षेत्रों में रहने वाले नौजवान युवक शर्ट-पैंट का भी प्रयोग करने लगे हैं। बैगा जनजाति की महिलाएं आभूषण प्रिय होती हैं। बैगा महिलाएं आभूषण के साथ-साथ गोदना भी गुदवाती हैं। इनकी संस्कृति में गोदना का अत्यधिक महत्व है। बैगा महिलाएं शरीर के विभिन्न हिस्से में गोदना गुदवाती हैं।



बैगा जनजाति के मुख्य व्यवसाय वनोपज संग्रह, बांस से चटाई एवं अन्य उपयोगी वस्तुओं का निर्माण करना, जंगली जड़ी-बूटियों से रोगों का उपचार, पशुपालन, मछली पकड़ना, शिकार करना, खेती तथा ओझा का कार्य करना आदि हैं। आधुनिकता के दौर में बैगा जनजाति की संस्कृति में भी आधुनिकता का प्रभाव दिखाई देने लगा है। बैगा अब सघन वनों में शिकार को छोड़कर मैदानी क्षेत्रों में रहना तथा कृषि कार्य करना प्रारंभ कर रहे हैं। बैगा लोगों का मानना है कि उनकी उत्पत्ति ब्रह्माजी के द्वारा हुई है इसलिए वे अपने आपको 'जंगल का राजा' और 'प्रथम मानव' मानते हैं। बैगा किवंदतियों के अनुसार बैगाओं को रामायण काल में मध्य क्षेत्र की स्वास्थ्य सुरक्षा का भार सौंपा गया था। इसी कारण इन लोगों को “वैद्य” कहा जाता था, किन्तु “वैद्य” शब्द अपभ्रंश होकर कालांतर में “बैगा” में परिवर्तित हो गया।

बैगा जनजाति में परिवार का मुखिया पुरुष होता है और परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेदारी उसकी होती है। यह समुदाय मृत्यु के बाद भी जीवन में विश्वास करती है। इनकी प्रथा के अनुसार मृत्यु के उपरांत शव को दफनाया जाता है। इस जनजाति में सामान्यतः विवाह हेतु लड़के की उम्र 16-18 वर्ष और लड़की की उम्र 14-16 वर्ष मानी जाती है। इसमें ममेरे/फुफेरे संतान विवाह एवं पुनर्विवाह आदि प्रचलित हैं। इसमें “वधुमूल्य विवाह” प्रथा प्रचलित है जिसमें वर पक्ष द्वारा वधु पक्ष को खर्च (वधुधन) के रूप में चावल, दाल, हल्दी, तेल, गुड़ एवं कुछ नकद रूपए दिए जाते हैं। बैगा जाति के लोग बूढ़ा देव एवं दूल्हा देव को अपना देवता मानते हैं। ये लोग झाड़-फूंक एवं जादू-टोना में विश्वास करते हैं। विशेष अवसरों पर इस जनजाति में पशु-बलि की प्रथा भी प्रचलित है। हरेली, नवाखानी, दशहरा, दीवाली, करमा पूजा, होली आदि इनके प्रमुख त्यौहार हैं। इनके लोक

गीतों में करमा, ददरियां, सुआ गीत, विवाह गीत, माता गीत, फाग गीत आदि और जनजातीय लोक नृत्य में करमा, बिलमा लहंगी, झरपट आदि हैं। इनके सामुदायिक मामलों का निपटारा ग्राम पंचायत स्तर पर किया जाता है जिसमें सामाजिक भोज, जुर्माना तथा जाति वहिष्कार जैसे दंड का प्रावधान है।

निष्कर्षतः यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भारत की प्राचीन जनजाति बैगा वन्य जीवन के संघर्षों को आज साधन के रूप में प्रयोग कर प्रगति के अवसर तलाश

रही है। आवश्यकता है तो केवल उनकी कला, सभ्यता एवं संस्कृति को सहर्ष स्वीकारते हुए उसे विश्व स्तर पर अलग पहचान दिलाने के सामूहिक प्रयासों की। ओड़िशा राज्य की प्रकृति एवं प्राचीन जातीय सभ्यता के कर्णधारों में से एक बैगा जनजाति विशेष संवैधानिक प्रावधानों द्वारा संरक्षित तो की जा रही है लेकिन किसी भी जनजाति को वास्तविक समर्थन तब मिलेगा जब लोगों द्वारा उन्हें हीन भावना से नहीं देखा जाएगा बल्कि गर्व के साथ **प्रकृति-पूजक, प्रथम मानव एवं जंगल के राजा** के रूप सराहा जाएगा।





वन, वनवासी तथा पॉलिथीन की घास और कंकरीट के जंगल

श्री अभिषेक कुमार

सहायक लेखा अधिकारी

लगभग दो वर्ष पहले की बात है, भुवनेश्वर के प्रदर्शनी मैदान में आदिवासी मेले का आयोजन राज्य सरकार के सहयोग से किया गया था। पूरे शहर में आदिवासी मेले की काफी चर्चा हो रही थी क्योंकि यह अपने आप में एक अनूठा आयोजन था। मुझे जब इसके बारे में पता चला तो मैं भी सपरिवार मेले का आनंद और अनुभव लेने पहुँचा। इस आदिवासी मेले ने मेरे मन पर गहरी छाप छोड़ी, विशेषकर मेले में बिकने वाले सामान और मेले की साज सज्जा। मेले में आदिवासी जन-जीवन की विविधता को बखूबी दिखाया गया था। सुंदर-सुंदर घास के घर, आदिवासी महिला, पुरुष तथा बच्चों की मूर्तियाँ जो विभिन्न क्रिया-कलापों को प्रदर्शित कर रही थी। यह सब शहर के लोगों के लिए "सेल्फी प्वाइंट" बना हुआ था। अब बात करते हैं मेले में उपलब्ध विभिन्न सामग्रियों के बारे में। विभिन्न प्रकार की जंगली जड़ी-बूटियाँ, बिल्कुल शुद्ध अवस्था में मोटे अनाज, दाल, शहद, गुड़, आँवला-रीठा-शिकाकाई, सुखा महुआ, देहाती मक्का, लकड़ी के नक्कासीदार सामान, बांस के सामान, घास की चटाई और भी स्वास्थ्य से संबंधित चीजें जो शहरी लोगों को हठात् ही गांव की स्मृति दिला जाती थी और भी बहुत कुछ जिसका वर्णन करना यहां मुश्किल है। एक तरफ आदिवासी लोक-नृत्य तथा लोग-गान लोगों को सम्मोहित कर रहे थे तो दूसरी तरफ देशी भोजन मन को ललचा रहे थे। इस मेले की खासियत यह थी कि सभी चीजें मूलरूप से देशी थी। अनाज भी देशी अर्थात् हाइब्रीड नहीं थे और सभी सामान भी हाथ से बने हुए थे।

उल्लेखनीय है कि शहरों में ऑर्गेनिक खाद्य पदार्थों की मांग बढ़ती जा रही है, परंतु हमारे वनवासी भाई-बहन हमेशा से ही ऑर्गेनिक भोजन ही अपनाते हैं। न तो वे ज्यादा पैदावार के चक्कर में पोषण रहित संकर फसलों का उपयोग करते हैं, न ही प्रकृति की उपेक्षा ही करते हैं। भारत की आत्मा के सच्चे रक्षक हमारे वनवासी समाज के लोग ही हैं। आज फसलों, फलों के बीजों के साथ जो प्रयोग चलते हैं और हर वर्ष ज्यादा-से-ज्यादा पैदावार करने वाले संकर बीजों से बाजार पट जाता है, वह पेट तो भर रहा है पर शायद पोषण नहीं दे पा रहा है और बढ़ते फर्टिलाइजर का प्रयोग भूमि और व्यक्ति दोनों को नुकसान पहुँचा रहा है। परंतु वनवासी समाज बीजों का पारंपरिक तरह से संरक्षण और संवर्धन करते रहे हैं।

विडंबना यह है कि आज का समाज जनसंख्या नियंत्रण पर उतना ध्यान नहीं दे रहा है जितना ज्यादा पैदावार वाले फसल, फल, सब्जी तथा ज्यादा दूध देने वाली गाय/भैंस, ज्यादा अंडे वाली मुर्गी, ज्यादा मांस देने वाली बकरी आदि पर रिसर्च करके संकर बीजों और संकर नस्लों से पेट भरने का उपाय कर रहा है, पर यह सब उतना कारगर नहीं है और नए-नए स्वास्थ्य संबंधी रिसर्च में भी यह बात सामने आई है कि ये सब स्वास्थ्य को उतना लाभ पहुँचाने में सक्षम नहीं है।

आज शहरी लोग विज्ञान के आविष्कारों की बदौलत खुद को सभ्य और वनवासी/आदिवासी लोगों को कम सभ्य मानते हैं परंतु हम अपने देश के इतिहास को देखे तो यह सहज ही जान पड़ता है कि प्राचीन समय से ही हमारे

देश के विज्ञानवेत्ता ऋषि मुनियों ने वनों में ही रह कर अनेक आविष्कार किए हैं। प्राचीन गुरुकुल भी वन में ही चला करते थे, जहाँ प्रकृति के सानिध्य में ही अध्ययन-अध्यापन होता था। हमारे देश के प्राण श्रीराम ने भी पिता की आज्ञा से 14 वर्ष एक वनवासी का जीवन व्यतीत किया था जिसका अद्भुत वर्णन गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरित मानस में मिलता है। बुद्ध हो या महावीर सभी महासंतों ने भी वन गमन किया था और आत्म-अन्वेषण किया था। देश के 33.3% भू-भाग पर वन होने चाहिए परंतु हमारे देश में केवल 19.5% भाग पर ही वन है। दुनिया में प्रति व्यक्ति पेड़ों का औसत 400 है परंतु भारत में यह औसत मात्र 28 है।

उपरोक्त डेटा काफी चिंता का विषय है। वनवासी समाज प्रकृति के सच्चे रक्षक हैं, उन्हें कई ऐसे औषधि के बारे में ज्ञान प्राप्त है जिनसे बिना किसी प्रकार के साइड इफेक्ट के आदमी तथा जानवर की चिकित्सा हो सकती है। आज भी गांवों, शहरों की अपेक्षा वनवासी महिलाएं सामान्य प्रसव से बच्चों जन्म देती हैं वहीं गांवों में यह प्रतिशत घटा है और शहरों में तो 90% से ज्यादा प्रसव सीजेरियन प्रसव होता है। अंतर साफ है कि शहरों में जन्म तथा मृत्यु दोनों ही जटिल प्रक्रिया बन चुकी है। गांवों और वन में श्रम की अधिकता से जीवन शैली से जुड़ी बीमारी कम या न के बराबर होती हैं। हाल में ही कोरोना जैसी महामारी ने जब मानव फेफड़ों का टेस्ट लिया तो शहरी फेफड़ों ने हार मानी वहीं गांवों और सूदूर वनों के वासियों के लिए यह एक सामान्य सर्दी-बुखार जैसा ही रहा अर्थात् उनका कुछ बिगाड़ न सकें।

हाल के विज्ञान के शोध ने भी यह साबित किया है कि मानव सहित जीव-जन्तुओं के आधे फेफड़े तो पेड़ों पर टंगे होते हैं। अर्थात् प्राण वायु का उत्पादन केंद्र मुख्यतः पेड़ तथा वनस्पति ही है।

उल्लेखनीय है कि हम शहर को वन नहीं बना सकते और न ही वनवासी बन सकते हैं परंतु न्यू ए.जी कॉलोनी की तरह आदर्श कॉलोनी जरूर बना सकते हैं जहां गांवों की तुलना में अधिक पेड़ हैं। हर तरह के पेड़ मिलकर कॉलोनी को एक वन की तरह ही बनाते हैं और शहरी प्रदूषण से हमें बचाते हैं, यही नहीं सुबह से शाम तक अनेक प्रकार के पक्षियों का घर भी बने रहते हैं।

हाल ही में हमारे कॉलोनी में वन विभाग द्वारा पेड़ों की कटाई-छटाई का अभियान चलाया गया जिसमें ज्यादा कटाई के विरोध में लोगों ने विरोध दर्ज किया जिसके बाद कटाई-छटाई नियंत्रित भी हुई। वहीं कुछ लोग कार पार्किंग के चलते पेड़ों की ज्यादा ही छटाई या कटाई करवा दिए जिसका भी भारी विरोध हुआ।

किसी व्याख्यान में मैंने सुना था कि हर जगह आम हो चुके प्लास्टिक तथा प्लास्टिक उत्पादों की आयु लगभग 800 वर्ष होती है। आज की प्रमुख समस्याओं में से एक बड़ी समस्या सिंगल यूज पॉलिथीन भी है जो शहर से गांव तक यूं ही मिल जाते हैं। शहरों में जहाँ-तहाँ हरी-हरी घासों की जगह रंग बिरंगे पॉलिथीनों ने ले लिया। जगह-जगह कचरों के ढेरों में सबसे ज्यादा पॉलिथीन ही मिलते हैं। शहरों में आवारा पशु या कुछ पालतू पशु भी कचरे के ढेर में खाना ढूंढ़ते हुए इन पॉलिथीन को खा जाते हैं जिससे उनकी असमय मौत हो रही है। मानो शहरों में पॉलिथीन ही घास बन गए हो। शहर ही क्या गांवों के मैदान और चारागाहों में भी सिंगल यूज पॉलिथीन घास चरने वाले पशुओं के पेट में चले जाते हैं और उन्हें नुकसान पहुँचाते हैं। भारत सरकार सिंगल यूज पॉलिथीन पर बैन लगा चुकी है और लोगों को जागरूक भी करती है किंतु लोगों में अभी जरूरी सचेतता नहीं आई है। इन सिंगल यूज प्लास्टिक को एक बार इस्तेमाल करके फिर कचरे के रूप में फेंक दिया जाता है जिससे वातावरण प्रदूषित होता है। जल, थल,

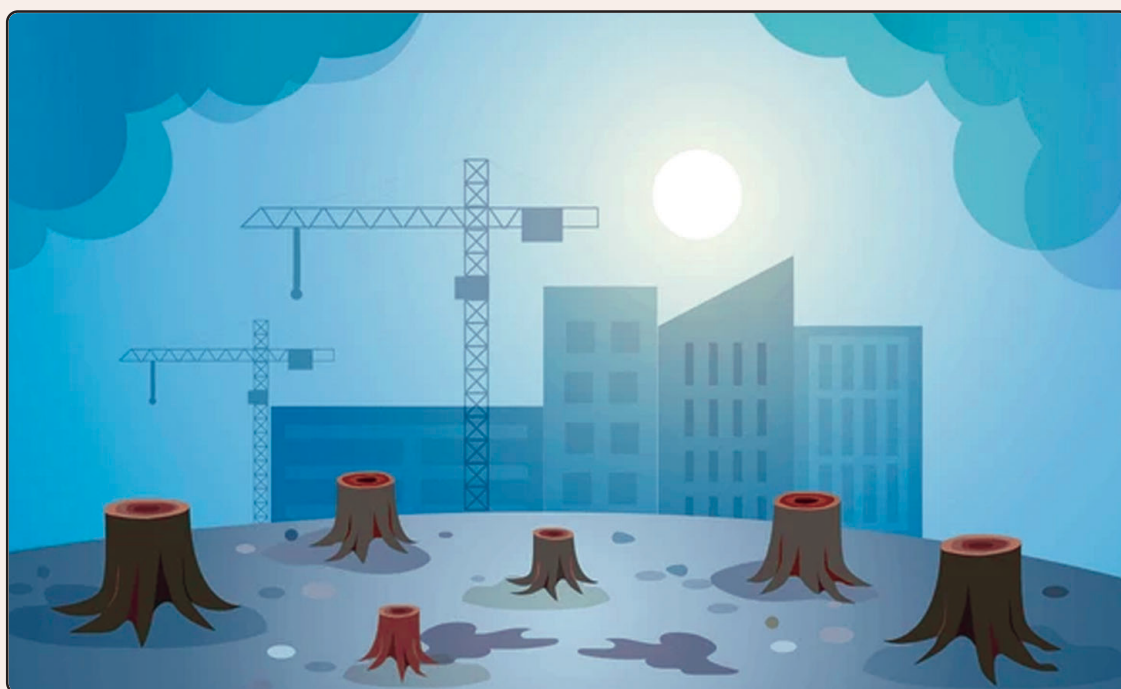
वायु, अग्नि, आकाश इन पांच तत्वों को यह प्रदूषित करता है। जल के प्रवाह को यह बाधित करता है, मिट्टी में जल को सोखने से रोकता है, जलने पर वायु और अग्नि को प्रदूषित करता है और जल्दी नष्ट न होकर यह स्थान को घेरकर कचरे का पहाड़ बनाता है अर्थात् आकाश तत्व को भी दूषित करता है। बेहद कम खर्च पर बनने वाले प्लास्टिक उत्पाद खतरनाक रसायन लिए होते हैं जिनका बुरा प्रभाव

जीवों सहित पर्यावरण पर पड़ता है। यही नहीं इस सिंगल यूज प्लास्टिक के कचरे की सफाई पर होने वाला खर्च भी बहुत अधिक होता है। जिस पन्नी में लोग सब्जी, फल आदि खरीद कर घर लाते हैं वह आसानी से फट तो जाता है पर पूरी तरह नष्ट नहीं

होता है और छोटे-छोटे टुकड़ों में बंटकर मिट्टी की उर्वरा शक्ति को कम करता है। अब तो मानव शरीर भी प्लास्टिक के कणों का घर बनता जा रहा है। कैंसर जैसी बीमारी के चपेट में ऐसे लोग आ रहे हैं जिन्होंने तम्बाकू, गुटखा, शराब आदि का कभी सेवन नहीं किया अर्थात् प्लास्टिक के कारण दोषी के साथ निर्दोष भी मारे जा रहे हैं।

आज जितने भी प्लास्टिक के प्रोडक्ट्स उपयोग किए जाते हैं उनमें से लगभग 50% रिसाइकल नहीं होते। आप इस समस्या की गंभीरता का अनुमान इसी से लगा सकते हैं कि दो दशक पहले जहां हरे-हरे घास दिखते थे

अब वहां छिन्न-भिन्न गंदे प्लास्टिक दिखते हैं। प्राकृतिक घास जहां जीवों को जीवन और सुख देता है वहीं प्लास्टिक रूपी घास जीवों को मृत्यु और वेदना ही देता है। समुद्र, पहाड़ों के पर्यटन स्थल, झील, तालाब, खेत हर जगह पॉलिथीन रूपी कचरा फैल चुका है। प्लास्टिक के उपयोग और सर्वत्र उपलब्धता के आधार पर इस युग को प्लास्टिक युग कहना गलत नहीं होगा।



उल्लेखनीय है कि कई देशों, राज्यों और शहरों में प्लास्टिक बैग, स्ट्रॉ, कटलरी प्लेटें, बोतलें और फोम कंटेनर जैसी सिंगल यूज प्लास्टिक की वस्तुओं पर पूर्ण या आंशिक प्रतिबंध लगाया गया है। जैसे हमारे देश में भी 05 जून, 2018 को विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर यह घोषणा की गई थी कि भारत 2022 तक सिंगल यूज प्लास्टिक को चरण बद्ध तरीके से समाप्त कर देगा। वहीं 01 जुलाई, 2022 से पर्यावरण मंत्रालय द्वारा 19 प्रकार के सिंगल यूज प्लास्टिक वस्तुओं पर पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया गया है। इन सबसे एक जागृति आई तो है पर धरातल पर

अब भी बहुत कुछ करना बाकी है। जब तक जन मानस स्वयं इस खतरे का भय समझकर प्लास्टिक को नहीं त्यागता है तब तक सरकार के प्रयास सफल नहीं हो सकते। अब समय आ गया है कि लोग सब्जी, फल, किराना सामान के लिए पहले की तरह झोला लेकर निकले और प्लास्टिक को खुद ही न कहे। तभी हम आने वाली पीढ़ी को एक सुरक्षित भविष्य दे पाएंगे।

एक अन्य संकट की बात करें तो वह यह है कि भौतिक सुखों की लालसा और अंधाधुंध शहरीकरण के कारण प्राकृतिक जंगल की जगह कंकरीट के जंगल अर्थात् कंकरीट की ऊंची-ऊंची इमारतें ले रही है। कल तक अच्छी पैदावार देने वाले खेतों में ऊंचे-ऊंचे अपार्टमेंट उग आए हैं जहां की बालकनियों से एकाध गुलाब झांक रहा होता है और गमलों की वनस्पति लुप्त हो रहे जंगल को बेबस निगाहों से ताक रहे हैं। पहले रोड के किनारे-किनारे पेड़ पौधों को लगाने हेतु पर्याप्त मिट्टी वाली जगह छोड़ी जाती थी वहीं उन जगहों पर फेवर ब्लॉक बिछ गई है और पेड़ों की झुंडों के एकाध फीट छोड़कर सब मिट्टी वाली जगहें फेवर ब्लॉक से पाट दी जा रही है। अब तो फूल, गमलें, माला अन्य सजावटी सामान भी प्लास्टिक के बने मिल रहे हैं जो क्षणिक सुंदरता तो देते हैं पर बाद में कचरा बनकर सुंदरता को नष्ट भी करते हैं।

अंधानुकरण की इस दुनिया में जिस प्रकार गर्मी में भी कोट-पैंट वाले खुद को ज्यादा स्मार्ट दिखाने की मूर्खता करते हैं, ठीक उसी प्रकार पार्कों में मैने नरम-नरम घास पर लोगों को जूते पहनकर दौड़ते देखा है। जब तक डॉक्टर न कहे कि खाली पैर घास पर टहलो, लोग स्पोर्ट्स लुक के चक्कर में अब जमीन से जुड़ना छोड़ रहे हैं। खासकर शहरों में लोगों के पैरों में मिट्टी का स्पर्श हुए तो कई-कई महीने हो जाते हैं। खुली हवाओं की जगह बंद कमरों में ऐसी की हवाओं ने ले लिया है और चिड़ियों की चहचहाहट तो लोग मैसेज के साउंड सेटिंग में सुनने लगे हैं। इन सब के मूल में बढ़ती जनसंख्या भी एक बड़ा कारण है। लोग अपनी आवश्यकता को पूरा करने के लिए हर विनाशकारी उपाय करने में लगे हैं सिवाय जनसंख्या नियंत्रण पर ध्यान देने के। पंच-तत्व से निर्मित इस शरीर को तभी तक सुरक्षित रखा जा सकता है जब तक प्रकृति के पंच-तत्व सुरक्षित हैं। जब तक मानव समाज वनों के संरक्षण-संवर्धन तथा खुद को वनवासियों के प्रकृति प्रेम से नहीं जोड़ेगा तब तक प्लास्टिक के घास और कंकरीट के जंगल इस प्रकृति को विकृत करते रहेंगे और मानव अपने अस्तित्व को समाप्त कर लेगा।

तो आइए हम सब मिलकर प्रकृति की ओर उन्मुख होकर इसका संरक्षण और संवर्धन करें तथा वनों को सुरक्षा देकर खुद को और परिस्थिति को सुरक्षित करें।



हिन्दी उन सभी गुणों से अलंकृत है जिनके बल पर वह विश्व की साहित्यिक भाषाओं की अगली श्रेणी में सभासीन हो सकती है।

- मैथिलीशरण गुप्त



श्री प्रिय चंदन कुमार

सहायक लेखा अधिकारी

ओड़िशा की ऐतिहासिक जनजाति : बोंडा

मैंने ओड़िशा की जनजातियों के बारे में अध्ययन करना शुरू किया। इस दौरान एक प्रेरणादायी खबर ने मेरा ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया और वह खबर थी 19 वर्षीय बोंडा जनजाति के एक छात्र की, जिसका नाम मंगला मुदुली है जो ओड़िशा के मलकानगिरि जिले के मुदुल पाड़ा गांव का रहने वाला है। उसने राष्ट्रीय पात्रता सह-प्रवेश परीक्षा (NEET) में आदिवासी आरक्षित सीटों में 261वाँ रैंक हासिल कर बोंडा जनजाति का पहला व्यक्ति बना। अगर बात करें इस जनजाति की तो 2011 की जनगणना के अनुसार इसकी साक्षरता दर 36.61% थी, जो ओड़िशा के सभी

62 जनजातियों में सबसे कम है जिससे मंगला की उपलब्धि और भी खास और प्रेरणादायी हो गई जिसने अपने समुदाय के अलगाव और संसाधनों की कमी से उत्पन्न चुनौतियों पर काबू पाकर यह विशेष उपलब्धि हासिल की और उन तमाम छात्रों के लिए प्रेरणस्रोत बना जो ऐसे मुश्किल परिस्थितियों का सामना करते हैं। इसी कहानी ने मेरी दिलचस्पी बोंडा जनजाति के अध्ययन में और बढ़ा दी।

ओड़िशा में निवास करने वाले कुल 62 जनजातियों में

से एक है-बोंडा जनजाति। यह जनजाति ऑस्ट्रो-एशियाटिक जनजाति समूह के सदस्य हैं। ऐसा माना जाता है कि हजारों साल पहले ये अफ्रीका से पलायन कर भारत आए थे और भारत के सबसे पहले जंगल में बसने वाले जनजातियों में से एक थे। इस जनजाति को बोंडो, बोंडो पोरान, भोंडा या रेमो के नाम से भी जाना जाता है। यह एक मुंडा जातीय समूह है,

जिसकी जनसंख्या

लगभग 12,000

है। इस जनजाति के लोग आपस में “रेमो” भाषा में बात करते हैं जो मुंडारी समूह से संबंधित ऑस्ट्रो-एशियाटिक भाषा के अंतर्गत आती है। इस जनजाति को प्रशासन के



हिसाब से दो भागों में विभाजित किया गया है- ऊपरी जनजाति और निचली बोंडा जनजाति। निचली बोंडा जनजाति वो हैं, जो पहाड़ से नीचे आकर आम लोगों की तरह जीवन-यापन करते हैं, परंतु ऊपरी बोंडा जनजाति घने जंगलों एवं ऊँचे पहाड़ों पर निवास करते हैं। वे आत्मनिर्भर होते हैं और अपनी जरूरतों की पूर्ति जंगलों से करते हैं तथा बहुत कम ही पहाड़ से नीचे आते हैं। लेकिन आज कल बोंडा आदिवासी अपने आसपास के साप्ताहिक बाजार में दिखने लगे हैं। वे

इन बाजारों में महुआ, रागी, मक्का या बाजरा बेचने आते हैं। इन चीजों को बेचकर वे अपनी जरूरत की चीजें बाजार से खरीदते हैं। बोंडा आदिवासी को सरकार ने PVTG की श्रेणी में रखा है, PVTG अर्थात् आदिम जनजाति मतलब इनकी शिक्षा, रोजगार, पहचान एवं स्वास्थ्य के लिए खास योजनाएं बनाई गई हैं।

इतिहास:

बोंडा आदिवासी, बोंडो या बोंडा पहाड़ी लोगों का दिया हुआ नाम है। वे खुद को “रेमो” कहते हैं। बोंडा भाषा में रेमो का अर्थ “लोग” होता है। बोंडा आदिवासी के वंश परंपरा को दो भागों में माना जाता है। “ऑतल” अर्थात् “नाग” और “कोलो” अर्थात् “बाघ”, लेकिन ये विभाजन मिथक बनकर रह गया है। फिलहाल, ये एक ही आदिवासी की पहचान रखते हैं। हालांकि इनमें कुलों का विभाजन है जो कुल 9 कुलों या समूहों में विभाजित है, जिन्हें कुला कहा जाता है। ये 9 कुल या कुला बदनायक, सीसा, घांघड़ा माझी, किरसानी, मुदुली, दोरा, जिगरी, चालन और मांदरा है। ये कुल अपने आदिवासी समूह के मुखिया या पुजारी के नाम से जाने जाते हैं।

वैवाहिक परंपरा:

बोंडा आदिवासी अपने कुल में विवाह को प्राथमिकता देते हैं परंतु कई बार ये लोग दूसरे कुल में भी विवाह कर लेते हैं। इस आदिवासी में गैर आदिवासियों से विवाह करना उचित नहीं माना जाता है। ये लोग अपने युवक-युवतियों को अपना साथी चुनने का विशेष अवसर देते हैं, जिनमें युवक और युवतियों के लिए अलग-अलग सामूदायिक भवन होते हैं, जिसमें इन्हें अपने समुदाय की परंपरा, रीति रिवाज और आर्थिक गतिविधियों का प्रशिक्षण दिया जाता है। इसी दौरान



इन्हें अपना साथी चुनने का भी अवसर प्राप्त होता है। ये पूरी प्रक्रिया बुजुर्गों की देख-रेख में चलती है। इसके अलावा दो परिवारों के सदस्य मिलकर भी शादी तय करते हैं परंतु कई बार लड़के के परिवार को लड़की के परिवार वालों को खुश करने में काफी मशक्कत करनी पड़ती है। इस दौरान लड़के वाले लड़की की सहमति के लिए लड़की के घर जाते हैं। सहमति के पश्चात् सल्फी, महुली और दूसरी खाने की चीजें ले जाते हैं। महिलाएं ऐसे पुरुष से विवाह करना पसंद करती हैं जो उनसे कम से कम 5-10 वर्ष छोटे हो ताकि जब वे वृद्ध हो जाएं तो पुरुष उनके भरण-भोषण की जिम्मेदारी संभाल सकें।

बोंडा महिलाओं का पहनावा:

बोंडा जनजाति की महिलाएं खास तरह से सजती-संवरती हैं। ये महिलाएं अपने सिर पर बाल नहीं रखा करती तथा हर दूसरे-तीसरे दिन अपना सिर मुंडवा लेती हैं और हाथ से बने विशेष तरह के मालाओं से अपने सिर को ढकती हैं। ये महिलाएं अपने कानों में बड़े-बड़े झुमके पहनती हैं। ये झुमके आमतौर पर कान के ऊपरी हिस्से से लटकाए जाते हैं। इनके गले के आभूषण भी अपने-आप में विशेष होते हैं

क्योंकि ये आभूषण चांदी या एल्युमिनियम के बने होते हैं। इस जनजाति की महिलाएं शरीर के ऊपरी हिस्से में कोई वस्त्र धारण नहीं करती बल्कि रंग-बिरंगे मालाओं से अपने शरीर के ढकती हैं। ये कमर के नीचे एक कपड़ा बांधती हैं जिसे इनकी भाषा में “रंगा” कहा जाता है। खास बात यह है कि इस कपड़े की बुनाई वो स्वयं ही करती हैं।

पूजा-पाठ:

बोंडा आदिवासी अपने पूर्वजों एवं अलग-अलग देवताओं की पूजा करते हैं, परंतु इनके सबसे बड़े अराध्य देव पटखांडा“ हैं। इनकी तुलना वे सिनकी और अरके अर्थात् चाँद और सूरज से करते हैं। पटखांडा असल में एक तलवार है, जो विशाल उसड़ के पेड़ के खोह में या

पेड़ के ऊपर रखा होता है जिसकी पूजा वर्ष में एक बार की जाती है और इसी तलवार से सूअर, बकरी इत्यादि पशुओं की बलि दी जाती है। इस समाज में शीसा या पुजारी की सामाजिक प्रतिष्ठा काफी ऊंची होती है। इसके अलावा देसारी को भी सामाजिक प्रतिष्ठा के लिहाज से काफी अहम स्थान मिलता है क्योंकि त्यौहारों का समय निर्धारित करना तथा बीमारियों का इलाज करना इनका ही काम है। इनके गांव में सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक दृष्टि से सिंडिवर की एक अहम भूमिका होती है। सिंडिवर पेड़ के नीचे पत्थर का बना एक चबूतरा होता है। सुख-दुख, न्याय इत्यादि यहीं पर तय होते हैं तथा त्यौहार भी यहीं पर मनाए जाते हैं।



हिन्दी भाषा और साहित्य ने तो जन्म से ही अपने पैरों पर खड़ा होना सीखा है।

– धीरेन्द्र वर्मा





श्री शिवानंद

कनिष्ठ अनुवादक

बिरहोर जनजाति

परिचय:

बिरहोर एक घुमक्कड़, सरल, शमीला और ईश्वर से डरने वाला तथा कम जाना-पहचाना जंगल में रहने वाला आदिवासी समुदाय है। बिरहोर लोग समूहों में रहते हैं। वे अर्ध खानाबदोश और शिकार करने वाले लोगों का समूह हैं, जो जंगल के वातावरण में मानव जीवन के प्रारंभिक चरण का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे अपने आपको सूर्य का वंशज होने का दावा करते हैं। उनकी बातचीत की भाषा ऑस्ट्रो-एशियाई उप-परिवार में मुंडा से संबंधित है, जिसमें 'संथाल' और 'हो' भाषाएँ भी शामिल हैं। उनमें से अधिकांश उड़िया भाषा अच्छी तरह से जानते हैं।

भारत सरकार और ओड़िशा सरकार ने बिरहोर समुदाय को अनुसूचित जनजाति के रूप में मान्यता दी है और विकास के उद्देश्य से इस समुदाय की पहचान “विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समुदाय, iParticularly Vulnerable Tribal Group (PVTG) के रूप में भी की गई है।

खानाबदोश जीवन:

वे छोटे समूहों में जंगलों में घूमते हैं, अस्थायी पत्ती झोपड़ी में रहते हैं, जिसे वे 'टांडा' कहते हैं। वे छोटे समूह बनाते हैं, प्रत्येक समूह में 10 से 15 परिवार होते हैं, जिनके बीच आपसी संबंध होते हैं। वे अपनी आजीविका चलाने के लिए परिपक्व सियाली लताओं और सियाली रस्सियों के विपणन के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं। वे ओड़िशा में, अंगुल, बालासोर, देवगढ़, ढेंकनाल, जाजपुर, क्यौंझर, मयूरभंज, सुंदरगढ़ और संबलपुर जिलों में छोटे समूहों में एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते पाए जाते हैं।

पत्तों की झोपड़ी

बिरहोर संवाद में, झोपड़ी को कुंभा कहा जाता है। यह शंकु के आकार की छोटी ऊंचाई की पत्ती की झोपड़ी



है जो पौधों और सूखी शाखाओं से बनी होती है और साल के पेड़ों और सियाली लताओं के ताजे पत्तों से ढकी होती है। यह बिना खिड़की वाला होता है, लेकिन इसमें टहनियों और पत्तियों से बना एक दरवाजा होता है। वे पानी के रिसाव और सरीसृपों के प्रवेश को रोकने के लिए कुंभा की बाहरी परिधि के चारों ओर एक मिट्टी की मेड़ बनाते हैं। बिरहोर दो से तीन घंटे के भीतर जल्दी से कुंभा बनाने में कुशल हैं।

आजीविका एवं अर्थव्यवस्था:-

रस्सी बनाना बिरहोर की अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख पहलू है। वे अनुभवी लोग सियाली लताओं की छाल को काटकर और छीलकर अच्छी किस्म के रेशों की कटाई करते हैं। वे सियाली के रेशों को अलग-अलग आकार

और पतले धागों में फाड़ते हैं और उन्हें रस्सी, गोफन, जाल, बैग और छोटी टोकरियाँ बनाने के लिए मोड़ते हैं। आजकल कुछ बिरहोर जूट, प्लास्टिक और सियाली रेशों से हेंड बैग जैसी फैसी वस्तुएँ बना रहे हैं।

बिरहोर पक्षियों और जानवरों की खाल उतारते हैं और उनकी चमड़ी को पास के गांवों या बाजारों में नकदी के लिए बेचते हैं। अक्सर खाल का इस्तेमाल संगीत वाद्ययंत्र बनाने में किया जाता है। जंगल में कई साल और दूसरे पेड़ों पर कोकून मिलते हैं और बिरहोर इन कोकूनों को चुनकर बेचते हैं जिससे उनकी आय बढ़ती है। बिरहोर अपने भोजन और आय के पूरक के रूप में बकरी, मुर्गी, कुत्ते आदि जैसे पालतू जानवर पालते हैं।

भोजन

बिरहोर का मुख्य भोजन चावल है। रस्सियों और वन उपज की बिक्री से मिलने वाली आय से वे बाज़ार से चावल और अन्य

खाद्य सामग्री की साप्ताहिक ज़रूरतें खरीदते हैं। वे फ़सल के मौसम में मक्का और छोटे-मोटे बाजरे भी खरीदते हैं और पके हुए चावल के अलावा इन्हें खाते हैं। वे अपने खाने के लिए जंगल से कई तरह के हरे पत्ते, मशरूम और केंदू, ताड़ और आम जैसे फल इकट्ठा करते हैं। वे जड़ें, कंद भी खोदते हैं और शहद इकट्ठा करते हैं, जो उनके आहार का पूरक है। त्यौहारों के मौकों पर वे नॉन-वेज व्यंजन, और दूसरी चीज़ें बनाते और खाते हैं। वे बंदर का मांस खाने के बहुत शौकीन हैं। बिरहोर चावल की बीयर (हंडिया) के भी बहुत शौकीन हैं। वे कभी-कभी मादक पेय, खास तौर पर मोहुली शराब पीते हैं।

सामाजिक जीवन

बिरहोर मानते हैं कि जीवन जन्म से लेकर मृत्यु तक एक सतत प्रक्रिया है। आम तौर पर बिरहोर के बीच विवाह के लिए सबसे अच्छा समय मानसून के बाद होता है जब लोगों के पास कुछ बचत होती है और मेहमानों और रिश्तेदारों का बिना किसी परेशानी के स्वागत किया जा सकता है। शादी के दिन दूल्हा अपने दोस्तों, रिश्तेदारों और टांडा सदस्यों के साथ दुल्हन के टांडा में एक शानदार जुलूस के साथ जाता है, जहाँ दुल्हन पक्ष द्वारा उनका गर्मजोशी से स्वागत किया जाता है। आमतौर पर, दुल्हन

को कुछ नकद राशि और तीन कपड़े दिए जाते हैं। इस समय दोनों पक्षों के लड़के-लड़कियां ढोल, बांसुरी, केला और अन्य वाद्य यंत्र बजाकर संगीत की धुन पर बहुत खुशी और आनंद से नाचते-गाते हैं।

बिरहोर परिवार में पुरुष और महिलाओं को समान दर्जा प्राप्त है। तुलनात्मक रूप

से, पुरुष लोग शिकार करना, पेड़ों पर चढ़ना जैसे कठिन काम करते हैं, जबकि महिलाएँ फाइबर प्रसंस्करण, रस्सी बनाना, गृह व्यवस्था, बच्चों की देखभाल, प्रसंस्करण, खाना पकाना और भोजन परोसना जैसे अपेक्षाकृत हल्के काम करती हैं। बच्चों को अपने माता-पिता की मदद करने के लिए सीख दी जाती है।

धार्मिक जीवन

बिरहोर लोग जीववाद में विश्वास करते हैं। उनकी आस्था और पूजा प्रकृति के इर्द-गिर्द घूमती है। वे अपने देवताओं को दो समूहों में वर्गीकृत करते हैं, परोपकारी समूह, यानी जो लोगों और समाज को प्रगति, समृद्धि और



कल्याण प्रदान करते हैं और दुष्ट समूह, जो परेशानी, बीमारी और मृत्यु का कारण बनते हैं। वे सूर्य देव को अपने सर्वोच्च देवता के रूप में पूजते हैं। उनका मानना है कि घने और गहरे जंगलों में उनके दो सर्वोच्च देवताओं, अर्थात् लोगोबिर और बुढिमई का निवास है। जंगल उनकी जीवन रेखा है। इसलिए, वे जंगली जानवरों के हमले से अपनी सुरक्षा और सफल शिकार और वन उपज की उपलब्धता के लिए प्राकृतिक जंगल की पूजा करते हैं। हर साल वे जंगल में एक बड़ा औपचारिक शिकार करते हैं, जिसे दिसुम सेंद्रा के नाम से जाना जाता है, जो वन देवता की अनुष्ठान पूजा के साथ शुरू होता है।

टांडा परिषद

प्रत्येक थोर टांडा एक स्वशासित सामाजिक-राजनीतिक इकाई होती है। टांडा परिषद सामाजिक नियंत्रण के तंत्र के शीर्ष पर है। इसमें नाइक, धर्मनिरपेक्ष प्रमुख, देहुरी, धार्मिक प्रमुख और टांडा में सभी घरों के मुखिया शामिल होते हैं। नाइक टांडा का पारंपरिक प्रमुख होता है। यह पद वंशानुगत होता है। कभी-कभी, टांडा प्रमुख देहुरी, पुजारी के रूप में कार्य करता है, देवताओं की पूजा करता है और सभी संस्कारों और अनुष्ठानों को पूरा करता है। टांडा का नाइक बस्ती में प्रथागत कानूनों, मानदंडों, रीति-रिवाजों को लागू करने के लिए जिम्मेदार होता है और ये सभी साथी लोगों के लिए बाध्यकारी होते हैं। टांडा और उसके सदस्यों से संबंधित सभी आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक आदि मामलों पर पारंपरिक टांडा परिषद की बैठकों में चर्चा की जाती है और निर्णय लिया जाता है। टांडा परिषद छोटे-मोटे उल्लंघनों के लिए जुर्माना लगाती है।

प्रदर्शन कलाएँ

बिरहोर संगीत, गीत और नृत्य के बहुत शौकीन हैं। उनकी कलात्मक प्रतिभा संगीत, गीत और नृत्य जैसी

प्रदर्शन कलाओं में प्रकट होती है। वे अपने खाली समय में और अनुष्ठानों और त्यौहारों के समय नाचते-गाते हैं। उत्सव के मौकों पर, वे गाते हैं, नाचते हैं और ढोल बजाते हैं और रात भर लगातार बांसुरी बजाते हैं।

बिरहोर के विशिष्ट नृत्य— डोंग, लग्रे और मुटकर विवाह के अवसरों पर विवाह गीतों के साथ किए जाने वाले विवाह नृत्य हैं। धार्मिक समारोहों के दौरान भक्ति गीत गाए जाते हैं। नृत्य और संगीत के लिए वे विभिन्न प्रकार के संगीत वाद्ययंत्रों का उपयोग करते हैं जैसे ढोलक या मादल, टोमका या नागाड़ा, तिरियो या बांस की बांसुरी, लकड़ी का केंडेरा या बैजो और छिपकली की खाल से ढका एक साउंडिंग बोर्ड और धनुष से बजाए जाने वाले तार, और पीतल से बने ताली और घुंघरू।

परिवर्तन और विकास

भारत सरकार और ओड़िशा सरकार द्वारा विभिन्न प्रयास किये जा रहे हैं जिसके अंतर्गत उन्हें इंदिरा आवास योजना के तहत घर, सामुदायिक घर, कुएं, ट्यूबवेल, पूरक पोषण आहार केंद्र, रसोई उद्यान, और सामाजिक कल्याण उपाय जैसे मतदाता पहचान पत्र, राशन कार्ड, बीपीएल कार्ड, वृद्धावस्था/विधवा पेंशन और विभिन्न आय सृजन योजनाओं के तहत सहायता प्रदान की जा रही है।

कुपोषण की समस्या से निपटने के लिए किचन गार्डन के विकास के लिए सहायता और सहयोग दिया जा रहा है। पपीता, केला, सहजन आदि फलदार वृक्षों के बीज और मिर्च, कद्दू, पोई, लौकी, गाजर जैसी सब्जियों और पलंगा, मेथी जैसी हरी पत्तियों के बीज वितरित किए जा रहे हैं। लोगों को प्रशिक्षित किया जा रहा है कि वे अपना किचन गार्डन विकसित करें और कुपोषण से बचने के लिए फल और सब्जियों का सेवन करें तथा बची हुई सब्जियों को बेचकर नकदी कमाएं। सरकार के प्रयासों से उन्हें आम-धारा में लाने लाने में सफलता मिली है।



श्री महेंद्र कुमार शतपथी
पर्यवेक्षक

ओड़िशा के आदिवासी स्वतंत्रता सेनानी

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में ओड़िशा की जनजातियों का अविस्मरणीय योगदान रहा है। आदिवासी लोग बहुत सरल और राजभक्त थे। ब्रिटिशों द्वारा लिए गए कुछ फैसलों से राजाओं को जो तकलीफ हो रही थी, उस तकलीफ को सरल आदिवासी लोग अपनी तकलीफ जैसा महसूस कर रहे थे। कुछ राजा भी अंग्रेजों के चाटुकार बन के प्रजाओं जिन में ज्यादातर आदिवासी थे, उन पर अत्याचार कर रहे थे। इसके अलावा अंग्रेजों द्वारा लिए गए कुछ फैसलों से आदिवासी लोगों के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन पर भी असर पड़ रहा था। आदिवासी लोगों की अंग्रेजी हुकुमत से नाराज़गी ने धीरे-धीरे विद्रोह का रूप धारण कर लिया।

स्वतंत्रता संग्राम में जनजातियों का नेतृत्व करने वालों में शहीद **लक्ष्मण नाईक** का नाम स्मरणीय है जिन्हें हम मलकानगिरी गांधी के नाम से जानते हैं। ये पहले सशस्त्र विद्रोह के पक्ष में थे। गांधीजी के सम्पर्क में आने के बाद आप अहिंसा आंदोलन में शामिल हुए। आप के नेतृत्व में कोरापुट इलाके में जनजाति लोगों ने अंग्रेजों के खिलाफ निरंतर आंदोलन किया था। आदिवासी एकता ने तो अंग्रेजी हुकुमत की नींद हराम कर दी थी, जिसकी वजह से 29 मार्च, 1943 को अहिंसा पथ पर चलने वाले आपको हत्या के गलत इल्जाम में मौत की सजा दी गयी थी। कोरापुट के **तमा दोरा** ने भी स्वतंत्रता संग्राम के पहले चरण में अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किया था, जिसके चलते ब्रिटिश सरकार ने उन्हें मार डाला था।

गंजाम इलाके में **धरणीधर नाईक** ने जनजातियों के अधिकार के लिए अंग्रेजों के खिलाफ लड़ा था। आप अपने

संगठन की दक्षता और रणनीति के लिए जाने जाते हैं। आदिवासी लोग आपके लिए मर मिटने को तैयार थे। इस इलाके के **नवधन कन्हार** ने भी अंग्रेजी नियमों के वजह से आदिवासी लोगों को हुए नुकसान के खिलाफ विद्रोह किया था।

अंग्रेज हुकुमत के खिलाफ लड़ने वाले एक और प्रमुख आदिवासी नेता थे घुमुसर के **चकरा विशोयी**। अंग्रेजों के हाथ अपने पिता **राम सिंह बख्शी** की हत्या के बाद चाचा **डोरा विशोयी** के साथ मिलकर रायगड़ा इलाके में अंग्रेजी आक्रमण के खिलाफ कंध जनजाति के लोगों का मोर्चा निकाला था। नतीजे में अंग्रेजों ने कंध समुदाय के लोगों पर बड़ा अत्याचार किया था। उनके घर जला दिए गए। हर बार जब भी आंदोलन थम जाता था आप उस चिंगारी को आग में बदल देते थे। बारह साल तक आपको ढूंढते-ढूंढते अंग्रेज परेशान हो चुके थे। आपको पकड़ने के लिये अंग्रेजों ने साम, दाम, दंड और भेद सब कुछ अपना लिया था। लेकिन आप कभी भी उनकी पकड़ में नहीं आये थे। आपकी मृत्यु 1857 को हुई जिस साल एक और बड़ा विद्रोह हुआ जिसे सिपाही विद्रोह कहते हैं।

जहाँ कालाहांडी में **रेंडो माझी** ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विरोध में खड़े हुए थे वहाँ क्यौंझर में **रत्ना नाइक** ने अंग्रेजों के खिलाफ सशस्त्र संग्राम का नारा दिया था। दोनों का स्वतंत्रता संग्राम में बड़ा योगदान था। मयूरभंज में **दयानिधि धारूआ**, गांगपुर में **माद्रि कालो**, बाणपुर में **साधु जानि** और **दुनाइ जानि** भी भारत माता की मुक्ति संग्राम में अपना सब कुछ न्योछावर कर दिए थे। ऐसे बहुत सारे जनजाति स्वतंत्रता सेनानी थे, जिनके बारे में इतिहास नीरस है। हमारा कर्तव्य है कि इस विषय पर शोध करके उन महापुरुषों का नाम लोगों के सामने लाएं और उनको उचित सम्मान मिले।





श्री अजय कुमार साव

कनिष्ठ अनुवादक

खड़िया: ओड़िशा की एक प्रमुख जनजाति

आज से कुछ वर्ष पहले जब किसी हिन्दू परिवार के घर में विवाह होता था तब वधू को किसी गाड़ी में बैठाकर नहीं बल्कि पालकी में बैठाकर विदा किया जाता था। इस पालकी को छः से आठ लोगों द्वारा उठाया जाता था, जो इसे अपने कंधे पर रखकर पैदल चलते थे। जो लोग इस पालकी को कंधे पर रखकर पैदल चलते थे, वे प्रायः एक विशेष जनजाति से संबंध रखते थे और वह जनजाति थी खड़िया जनजाति। दरअसल मुंडरी भाषा में पालकी को खड़खड़िया कहा जाता है और इसे ढोने वाले लोगों को खड़िया। यहीं से इस जनजाति का नामकरण हुआ है। आज के आधुनिक युग में पालकी का अस्तित्व तो कहीं न कहीं समाप्त हो गया है, परंतु खड़िया जनजाति के लोग आज भी भारत के कुछ राज्यों में समूह बनाकर रहते हैं।

परिचय:

खड़िया ओड़िशा की एक प्रमुख जनजाति है, जो मुख्यतः ओड़िशा के सुंदरगढ़, संबलपुर, मयूरभंज और झारसुगुड़ा के इलाकों में रहते हैं। ओड़िशा के अलावा यह जनजाति झारखंड, छत्तीसगढ़ और बिहार के कुछ इलाकों में भी पाए जाते हैं। वर्ष 2011 के आंकड़ों के अनुसार भारत में खड़िया जनजाति की कुल जनसंख्या 4,82,754 है, वहीं ओड़िशा में इनकी जनसंख्या 1,88,331 है। 2011 की जनगणना के अनुसार ओड़िशा में इनका लिंगानुपात 1015 है अर्थात् प्रति 1000 पुरुषों पर 1015 महिलाएं हैं। इनकी साक्षरता दर 45.23 प्रतिशत है जो पुरुषों में 56.16 प्रतिशत एवं महिलाओं में 34.52 प्रतिशत है। यह जनजाति आरम्भ में किसी एक जगह पर नहीं बसा करती थी।

इसका मुख्य कारण इनका खानाबदोश प्रवृत्ति का होना था, जो खाने की तालाश में एक जगह से दूसरी जगह भटकते रहते थे। जब भी ये लोग किसी एक जगह से दूसरी जगह जाते थे, तब ये वहां अपने लिए एक अस्थायी निवास तैयार करते थे, जिसे इनकी भाषा में 'तंडा' कहा जाता है। अगर हम इतिहासकारों की मानें तो ये जनजाति शुरू-शुरू में दक्षिण भारत में रहा करती थी जो बाद में भटकते हुए उत्तर भारत में पहुंची। उत्तर भारत में आने के बाद ये लोग सबसे पहले बिहार के रोहतास नामक इलाके में बसे फिर वहां से अलग-अलग शाखा में छत्तीसगढ़, झारखंड और ओड़िशा की तरफ चले गए। ये जनजाति प्रोटो-ऑस्ट्रेलॉयड जाति से संबंध रखती है। भाषाई रूप से, ये मुंडा भाषा परिवार से संबंधित हैं परंतु समय के साथ-साथ ये अपनी भाषा भूलते गए और अब ये ओड़िया, हिंदी और टूटी-फूटी बंगाली भी बोलते तथा समझते हैं।

पहचान:

अगर हम इनकी पहचान की बात करें तो इस जनजाति के लोग मुख्यतः तीन वर्गों में विभाजित हैं-

1. पहाड़ी खड़िया
2. दूध खड़िया
3. ढेलकी खड़िया

तीनों वर्गों में से सबसे पिछड़ा वर्ग पहाड़ी खड़िया है जो आज भी जंगलों पर निर्भर हैं। इसके पीछे का मुख्य कारण इनका “लूट लाओ खूट खाओ” नामक एक विशेष अवधारणा पर विश्वास रखना है, जिसका तात्पर्य इन्हें बिना किसी प्रकार की आय किए जो भी इनके पास उपलब्ध

प्राकृतिक संसाधन है उन्हें लूट कर/इकट्टा कर ले आना और उसी पर अपना जीवन यापन करना है। पहाड़ी खड़िया का अपना एक अनोखा वस्त्र भी है जिन्हें ये लोग "करैया" कहते हैं जो मुख्यतः कमर से लेकर घुटने तक को ढकने का काम करती है। वहीं इन तीनों समुदायों में से सबसे विकसित समुदाय दूध खड़िया है, जिन्होंने समय के साथ समाज में लगातार हो रहे परिवर्तन को अपनाया और खेती को अपना मुख्य पेशा बनाकर धीरे धीरे समाज के हाशिए से उठकर मुख्यधारा में अपनी पहचान बना ली। आज के समय में यह समुदाय काफी हद तक विकसित है।

आजीविका:

इस जनजाति के लोग अपनी आजीविका के लिए मुख्य रूप से वन्य संसाधनों पर निर्भर हैं। ये पेड़ों पर चढ़ने और शहद इकट्टा करने में माहिर होते हैं। ये शहद, अरारोट, खाद्य जड़ें, फल और जड़ी-बूटियाँ जैसे छोटे वन उत्पाद इकट्टा कर इनका उपभोग करते हैं तथा अधिशेष को अन्य जातियों और जनजातियों के लोगों को बेचते हैं। इसके आलावा ये जंगल से एकत्र सबई घास और जंगली रेशों से रस्सी बनाने में भी कुशल होते हैं। ये साल भर भोजन तथा अन्य वस्तुओं की तलाश में जंगल में घूमते और डेरा डालते हैं। इस जनजाति के अन्य वर्ग आजीविका के प्रमुख स्रोत के रूप में खेती करते हैं और मौसमी वन संग्रह पर भी निर्भर रहते हैं। खड़िया महिलाएँ खजूर और बांस की टहनियों से चटाई बुनने में दक्ष होती हैं। वे अपने इस्तेमाल के साथ-साथ बिक्री के लिए सियाली के पत्तों से कप और प्लेट भी बनाया करती हैं। पशुपालन और मछली पकड़ना इनका अतिरिक्त व्यवसाय है। खड़िया लोग अपने कृषि कार्यों, घरेलू उपभोग, धार्मिक अनुष्ठानों और त्योहारों में होने वाले खर्चों को पूरा करने के लिए गाय, सूअर, बकरी, भेड़ आदि जैसे विभिन्न प्रकार के जानवरों और पक्षियों का पालन भी करते हैं। खाली समय में ये लोग मछली पकड़ने

के लिए पास की नदियों और नालों में जाते हैं। वर्तमान में इन्होंने अपनी आजीविका के लिए छोटे-मोटे व्यवसायों को भी अपना लिया है और इनमें से कुछ लोग दैनिक मजदूर के रूप में खदानों या उद्योगों में काम करने के लिए पास के शहरों में भी जा रहे हैं।

भोजन:

इन लोगों का मुख्य भोजन चावल है। इसके अलावा ये फल, जड़ें, कंद, हरी पत्तियाँ, मशरूम, आदि भी उबालकर खाते हैं। सुबह में ये आमतौर पर तले हुए हरे पत्तों, हरी मिर्च और नमक के साथ पानी वाले चावल खाते हैं। दोपहर और रात के खाने में ये सब्जी के साथ उबले हुए चावल खाते हैं। चावल के अलावा, ये रागी दलिया, मक्का और बाजरा भी खाते हैं। अन्य आदिवासी लोगों की तरह ये लोग भी मांसाहारी भोजन के शौकीन हैं। ये बकरियों, मुर्गियों और मछलियों का मांस खाना खूब पसंद करते हैं। उत्सव और अनुष्ठान के अवसरों पर ये अपने खाने के लिए विशेष भोजन तैयार करते हैं। पेय पदार्थ के रूप में ये लोग दो तरह की शराब पीते हैं, चावल की बीयर (हंडिया) और महुआ शराब (मोहुली माड़)। त्यौहारों और अनुष्ठानों के दौरान ये लोग देवताओं, आत्माओं और अपने पूर्वजों को खुश करने के लिए उन्हें भी शराब अर्पित करते हैं। तम्बाकू इनके बीच बहुत लोकप्रिय है।

सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था:

खड़िया लोगों का सामाजिक-राजनीतिक जीवन अत्यंत सरल होता है। सामाजिक एकता, कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए उनकी पारंपरिक परिषद दो अलग-अलग स्तरों ग्राम पंचायत और अंतर ग्राम पंचायत के रूप में गठित की जाती है। राजाओं के शासन के दौरान, इनका प्रशासन सरदार/जमींदार के माध्यम से चलता था। उस समय ये लोग अपने इलाके के सरदार/जमींदार को विभिन्न प्रकार के वन उपज के रूप में राजस्व दिया करते थे, जिसे

सरदार/जमींदार ही राजा तक पहुंचाते थे। वर्तमान में, हर खड़िया गाँव की अपनी एक पारंपरिक पंचायत होती है, जिसके मुखिया को पहाड़ी खड़िया में "प्रधान", ढेलकी खड़िया में "कालो" और दूध खड़िया में "कालो या बैगा" कहा जाता है। वह मुखिया परिषद की बैठक की अध्यक्षता करता है, न्यायाधीश के रूप में कार्य करता है और संपत्ति के विभाजन, तलाक, व्यभिचार, वर्जना का उल्लंघन, भूमि की बिक्री और बंधक, विवाह, वधू मूल्य इत्यादि से संबंधित विवादों को परिषद के अन्य नेताओं की मदद से सुलझाता है। किसी भी प्रकार की समस्याओं को सुलझाने में मुखिया तथा परिषद के अन्य नेताओं को इलाके के देहुरी (पुजारी), छतिया/डाकुआ (दूत), गुनिया (जादूगर) द्वारा सहायता प्रदान की जाती है। दोषियों को दी जाने वाली सजा उनके अपराधों की गंभीरता पर निर्भर करती है। आमतौर पर दोषी को वस्तु और नकद के रूप में जुर्माना भरने के लिए कहा जाता है परंतु सामाजिक मानदंडों के गंभीर उल्लंघन जैसे मामले में, दोषी को समुदाय से बहिष्कृत कर दिया जाता है।

पारंपरिक गांव की पंचायत नियमित रूप से सार्वजनिक पूजा, धार्मिक उत्सव और त्यौहार के लिए चंदा इकट्ठा करती है।

ग्राम पंचायत से ऊपर अंतर-ग्राम पंचायत होती है जिसे इनकी भाषा में "परहा पंचायत या कुटुम सभा या भीरा" कहा जाता है। परहा पंचायत का गठन एक से अधिक गांवों से सदस्यों को मिलाकर किया जाता है।

इसके मुखिया को "करताहा" कहते हैं। करताहा का पद पहले वंशानुगत हुआ करता था परंतु आजकल इनका चयन चुनावों द्वारा किया जाता है। अंतर ग्राम पंचायत आदिवासी प्रथागत कानून के संरक्षक के रूप में कार्य करती है। अधिक जटिल मामलों जिनका फैसला करना ग्राम पंचायत द्वारा संभव नहीं होता है, उन्हें अंतर-ग्राम परिषद के पास भेजा जाता है। इसके पास समुदाय से बहिष्कृत व्यक्ति को जनजाति में पुनः शामिल करने का विशेषाधिकार होता है।

संस्कृति एवं परंपराएं:

खड़िया समुदाय के लोग काफी सीधे-सादे होते हैं जो प्रकृति को पूजते हैं। इनके प्रमुख देवता "ठकुरानी" अर्थात् पृथ्वी माता और "धर्म देवता" अर्थात् सूर्य देव हैं। देवी-देवताओं के साथ-साथ ये लोग आत्माओं की भी पूजा अर्चना किया करते हैं जिनमें "पट्स" अर्थात् पहाड़ों पर रहने वाली आत्मा प्रमुख है। इसके अलावा ये लोग "गुमी" नामक देवी की भी पूजा करते हैं तथा काले जादू में भी विश्वास रखते हैं। इनके गांव के पारंपरिक पुरोहित



नेता को “देहुरी” कहा जाता है जिनका पद वंशानुगत होता है। देहुरी को अनुष्ठानों, त्यौहारों और समारोह के दौरान देवताओं और आत्माओं की पूजा करने के लिए बुलाया जाता है, पूजा के दौरान देवताओं को पशु बलि देकर एवं शराब चढ़ाकर खुश किया जाता है। इसके अलावा ये देहुरी कुछ धर्म निरपेक्ष कर्तव्यों एवं जिम्मेदारियों का भी निर्वहन करते हैं जिसके लिए इन्हें बहुत सम्मान दिया जाता है।

खड़िया जनजाति के प्रमुख त्यौहार “फागु, आम नुआखाई, पूस परब, कर्मा पूजा, मकर, दशहरा इत्यादि” है। “फागु” का त्यौहार खड़िया के भोजन एकत्रीकरण और शिकार से जुड़ा है। इस त्यौहार के दो चरण होते हैं। प्रथम चरण औपचारिक शिकार अभियान से संबंधित है जिसमें फागुन माह के पुर्णिमा के पहले वाले दिन की सुबह खड़िया पुरुष अपने धनुष, तीर, कुल्हाड़ी इत्यादि हथियारों के साथ एक औपचारिक शिकार अभियान के लिए एकत्र होते हैं तथा गांव के पुरोहित (देहुरी) के नेतृत्व में शिकार अभियान शुरू करते हैं। त्यौहार का दूसरा चरण फलों, खाद्य पत्तियों, कंदों और मौसम की अन्य उपज को पहली बार खाने या उपयोग करने से पहले संरक्षित करना है। ‘पूस परब’ भी खड़िया समुदाय का एक प्रमुख त्यौहार है जिसे जनवरी के महीने में मनाया जाता है। इसमें अपने पूर्वजों एवं गांव के देवताओं को चावल अर्पित किया जाता है तथा पशुओं की बलि दी जाती है। इस त्यौहार का मुख्य उद्देश्य सामान्य भलाई के लिए अपने पूर्वजों तथा देवताओं का आशीर्वाद प्राप्त करना और बिना किसी दुर्घटना या

बीमारी के अपनी विभिन्न आर्थिक गतिविधियों में सफलता प्राप्त करना है।

परिवर्तन और विकास:

परिवर्तन सृष्टि का शाश्वत नियम है। खड़िया इसके अपवाद नहीं है। इनका जीवन स्थिर या “अतीत से चिपका हुआ” नहीं है। हाल के दिनों में, अन्य लोगों की तरह ही इन्होंने भी नए विचारों एवं नई स्थितियों को अपनाया है। तेजी से हो रही वनों की कटाई, वन्य संसाधनों के दोहन, जंगली जानवरों के शिकार के खिलाफ कड़े कानूनों के प्रवर्तन इत्यादि को ध्यान में रखते हुए खड़िया समुदाय ने अपनी आजीविका के लिए स्थिर कृषि, पशुपालन और मजदूरी जैसी विविध आर्थिक गतिविधियों को अपना लिया है। कृषि और उससे जुड़े कामों में ये लोग आधुनिक तरीके और तकनीक का भी उपयोग करने लगे हैं। कई कारक जैसे कि पड़ोसी जातियों, जनजातियों और समुदायों के साथ इनका दीर्घकालिक संपर्क, सरकारी और गैर-सरकारी एजेंसियों द्वारा विभिन्न योजनाबद्ध विकास हस्तक्षेपों सहित सुरक्षात्मक और प्रचारात्मक राज्य नीतियों के प्रभाव इत्यादि ने खड़िया समुदाय के जीवन और आजीविका के क्षेत्र में उल्लेखनीय परिवर्तन लाए हैं। ये परिवर्तन इनके जीवन के आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रों में परिलक्षित होते हैं। इनकी साक्षरता एवं शिक्षा के स्तर के साथ-साथ आय में भी सुधार हुआ है। भविष्य में, आशा है कि खड़िया समुदाय के लोग समय के साथ सामाजिक-आर्थिक रूप से और आगे बढ़ेंगे तथा सामान्य आबादी के स्तर तक पहुंचेंगे।



हिंदी चिरकाल से ऐसी भाषा रही है जिसने मात्र विदेशी होने के कारण किसी शब्द का बहिष्कार नहीं किया।

– डॉ. राजेंद्र प्रसाद



श्री गौरव यादव

सहायक लेखा अधिकारी

ओडिशा के विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह

विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह (Particularly Vulnerable Tribal Group) भारत के सबसे कमजोर और हाशिए पर रहने वाले जनजातीय समुदायों में से एक हैं। ये जनजातियाँ सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक रूप से पिछड़ी हुई हैं और इन्हें विशेष संरक्षण की आवश्यकता है। विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह (PVTG) की पहचान के लिए निम्नलिखित मानदंड अपनाए जाते हैं:

1. **पूर्व-कृषि स्तर की प्रौद्योगिकी:** इन जनजातियों की प्रौद्योगिकी और जीवन-शैली कृषि से पहले के स्तर पर होती है।
2. **बहुत कम साक्षरता स्तर:** इन जनजातियों में साक्षरता का स्तर अत्यंत निम्न होता है।
3. **आर्थिक पिछड़ापन:** ये जनजातियाँ आर्थिक रूप से अत्यंत पिछड़ी होती हैं और मुख्यतः जीविका के लिए प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर रहती हैं।
4. **स्थिर या घटती जनसंख्या:** इन जनजातियों की जनसंख्या स्थिर या घटती हुई होती है।

भारत सरकार ने ओडिशा में 13 विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह (PVTG) की पहचान की है। ओडिशा के विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह की जानकारी निम्नलिखित है।

1. बोंडा जनजाति (Bonda Tribe)

बोंडा जनजाति ओडिशा के मलकानगिरी जिले की पहाड़ियों में निवास करती है। यह जनजाति अपनी अनूठी संस्कृति और परंपराओं के लिए जानी जाती है। बोंडा जनजाति को दो समूहों में विभाजित किया गया है: ऊपरी बोंडा और

निचली बोंडा।

जनसंख्या: 2011 की जनगणना के अनुसार, बोंडा जनजाति की कुल जनसंख्या लगभग 12,231 है। इनमें से ऊपरी बोंडा की जनसंख्या लगभग 6,700 है, जो मुख्यधारा की भारतीय समाज से सबसे अधिक अलग-थलग हैं।

कला और संस्कृति: बोंडा जनजाति की महिलाएँ अपने पारंपरिक आभूषण और वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध हैं। ये लोग धातु की नक्काशी और बुनाई में भी माहिर होते हैं।

व्यंजन: बोंडा जनजाति का प्रमुख भोजन चावल, मछली और जंगली फल हैं। ये लोग महुआ के फूलों से शराब भी बनाते हैं, जो उनके सामाजिक और धार्मिक आयोजनों का हिस्सा होती है।

2. बिरहोर जनजाति (Birhor Tribe)

बिरहोर जनजाति ओडिशा के झारसुगुड़ा और सुंदरगढ़ जिलों में निवास करती है। यह जनजाति मुख्यतः जंगलों पर निर्भर रहती है और पारंपरिक रूप से घुमंतू जीवन शैली अपनाती है। बिरहोर जनजाति का नाम “बिर” (जंगल) और “होर” (लोग) से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है “जंगल के लोग”।

जनसंख्या: बिरहोर जनजाति की कुल जनसंख्या लगभग 596 है। यह जनजाति झारखंड, छत्तीसगढ़ और पश्चिम बंगाल में भी पाई जाती है, लेकिन ओडिशा में इनकी संख्या कम है।

कला और संस्कृति: बिरहोर जनजाति के लोग बांस की टोकरी और रस्सी बनाने में माहिर होते हैं। बिरहोर जनजाति के लोग अपने पारंपरिक धार्मिक विश्वासों का

पालन करते हैं और प्रकृति की पूजा करते हैं।

3. चुकटिया भुंजिया जनजाति (Chuktia Bhunjia Tribe)

चुकटिया भुंजिया जनजाति ओडिशा के नुआपाड़ा जिले के सुनाबेड़ा पठार में निवास करती है। यह जनजाति अपनी अनूठी संस्कृति और परंपराओं के लिए जानी जाती है। चुकटिया भुंजिया जनजाति का नाम 'चुकटिया' का अर्थ है 'चार कोनों वाला', जो उनके पारंपरिक घरों के आकार को दर्शाता है।

जनसंख्या: 2011 की जनगणना के अनुसार, चुकटिया भुंजिया जनजाति की कुल जनसंख्या लगभग 2,378 है।

कला और संस्कृति: चुकटिया भुंजिया जनजाति के लोग बांस की टोकरी और अन्य हस्तशिल्प बनाने में माहिर होते हैं। ये लोग अपने पारंपरिक नृत्य और संगीत के माध्यम से अपनी संस्कृति को जीवित रखते हैं। इनके प्रमुख त्योहारों में दशहरा, बीज संस्कार और महुआ संग्रहण शामिल हैं।

व्यंजन: चुकटिया भुंजिया जनजाति का प्रमुख भोजन चावल, दाल, सब्जियाँ और जंगली फल हैं। ये लोग महुआ के फूलों से शराब भी बनाते हैं, जो उनके सामाजिक और धार्मिक आयोजनों का हिस्सा होती है।

4. दिदाई जनजाति (Didayi Tribe)

दिदाई जनजाति ओडिशा के मलकानगिरी जिले की कौंडा काम्बेरू पहाड़ियों में निवास करती है। यह जनजाति अपनी अनूठी संस्कृति और परंपराओं के लिए जानी जाती



है। दिदाई जनजाति का नाम 'दिदाई' का अर्थ है 'पहाड़ी लोग'।

जनसंख्या: 2011 की जनगणना के अनुसार, दिदाई जनजाति की कुल जनसंख्या लगभग 7,250 है यह जनजाति मुख्यतः पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करती है और कृषि पर निर्भर रहती है।

कला और संस्कृति: इनके प्रमुख त्योहारों में दशहरा, बीज संस्कार और महुआ संग्रहण शामिल हैं।

5. जुआंग जनजाति (Juang Tribe)

जुआंग जनजाति ओडिशा के क्यौंझर और ढेंकानाल जिलों की गोनसिका पहाड़ियों में निवास करती है। यह जनजाति अपनी अनूठी संस्कृति और परंपराओं के लिए जानी जाती है। 'जुआंग' का अर्थ है 'पत्तों के वस्त्र पहनने वाले लोग', जो उनके पारंपरिक वस्त्रों को दर्शाता है।



जनसंख्या: 2011 की जनगणना के अनुसार, जुआंग जनजाति की कुल जनसंख्या लगभग 47,095 है। यह जनजाति मुख्यतः पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करती है और कृषि पर निर्भर रहती है।

कला और संस्कृति: जुआंग जनजाति के लोग बांस की टोकरी और अन्य हस्तशिल्प बनाने में माहिर होते हैं। इनके प्रमुख त्योहारों में पुशा पूर्णिमा, अम्बा नुआखिया, पिरहा पूजा, अक्षय तृतीया, असाढ़ी और गहमा शामिल हैं।

6. डोंगरिया कोंध जनजाति (Dongaria Kondh Tribe)

डोंगरिया कोंध जनजाति ओडिशा के कालाहांडी और रायगड़ा जिलों की नियामगिरि पहाड़ियों में निवास करती है। यह जनजाति अपनी अनूठी संस्कृति और परंपराओं के लिए जानी जाती है। डोंगरिया कोंध जनजाति का नाम “डोंगरिया” का अर्थ है “पहाड़ी लोग”।

जनसंख्या: डोंगरिया कोंध जनजाति की कुल जनसंख्या लगभग 10,000 है।

कला और संस्कृति: डोंगरिया कोंध जनजाति के लोग बांस की टोकरी और अन्य हस्तशिल्प बनाने में माहिर होते हैं। इनके प्रमुख त्योहारों में नियाम राजा की पूजा शामिल है, जो उनके सर्वोच्च देवता हैं।

7. मांकिडिया जनजाति (Mankidia Tribe)

मांकिडिया जनजाति ओडिशा के मयूरभंज, संबलपुर, कालाहांडी और सुंदरगढ़ जिलों में निवास करती है। यह जनजाति मुख्यतः घुमंतू जीवन शैली अपनाती है और जंगलों पर निर्भर रहती है। मांकिडिया जनजाति का नाम “मांकडा” (ओड़िया में बंदर) से लिया गया है, क्योंकि ये लोग बंदर पकड़ने में माहिर होते हैं।

जनसंख्या: 2011 की जनगणना के अनुसार, मांकिडिया जनजाति की कुल जनसंख्या लगभग 2,222 है।

कला और संस्कृति: मांकिडिया जनजाति के लोग बांस की टोकरी और रस्सी बनाने में माहिर होते हैं। मांकिडिया जनजाति के लोग अपने पारंपरिक धार्मिक विश्वासों का पालन करते हैं और प्रकृति की पूजा करते हैं। इनके प्रमुख देवता लोगोबीर और बुद्धिमाई हैं।

8. हिल खारिया जनजाति (Hill Kharia Tribe)

हिल खारिया जनजाति ओडिशा के मयूरभंज जिले के जसीपुर और करंजिया क्षेत्रों में निवास करती है। यह जनजाति मुख्यतः जंगलों पर निर्भर रहती है और पारंपरिक रूप से

घुमंतू जीवन शैली अपनाती है।

जनसंख्या: 2011 की जनगणना के अनुसार, हिल खारिया जनजाति की कुल जनसंख्या लगभग 1,908 है।

9. कुटिया कोंध जनजाति (Kutia Kondh Tribe)

कुटिया कोंध जनजाति ओडिशा के कालाहांडी और कंधमाल जिलों में निवास करती है। यह जनजाति अपनी अनूठी संस्कृति और परंपराओं के लिए जानी जाती है।

जनसंख्या: 2011 की जनगणना के अनुसार, कुटिया कोंध जनजाति की कुल जनसंख्या लगभग 1,743,406 है।

कला और संस्कृति: इनके प्रमुख त्योहारों में दशहरा, बीज संस्कार और महुआ संग्रहण शामिल हैं।

10. लांजिया साओरा जनजाति (Lanjia Saora Tribe)

लांजिया साओरा जनजाति ओडिशा के गजपति और रायगड़ा जिलों की पहाड़ियों में निवास करती है। यह जनजाति अपनी अनूठी संस्कृति और परंपराओं के लिए जानी जाती है।

जनसंख्या: 2011 की जनगणना के अनुसार, लांजिया साओरा जनजाति की कुल जनसंख्या लगभग 11,820 है।

कला और संस्कृति: इनके प्रमुख त्योहारों में नियाम राजा की पूजा शामिल है, जो उनके सर्वोच्च देवता हैं।



11. लोधा जनजाति (Lodha Tribe)

लोधा जनजाति ओडिशा और पश्चिम बंगाल में निवास करती है। यह जनजाति मुख्यतः जंगलों पर निर्भर रहती है और पारंपरिक रूप से घुमंतू जीवन शैली अपनाती है।



जनसंख्या: 2011 की जनगणना के अनुसार, ओडिशा में लोधा जनजाति की कुल जनसंख्या लगभग 9,785 है।

12. साओरा जनजाति (Saora Tribe)

साओरा जनजाति ओडिशा के गजपति, रायगड़ा और बरगढ़ जिलों में निवास करती है। यह जनजाति अपनी अनूठी संस्कृति और परंपराओं के लिए जानी जाती है।

जनसंख्या: 2011 की जनगणना के अनुसार, साओरा जनजाति की कुल जनसंख्या लगभग 709,349 है।

13. पाउड़ी भुइयां जनजाति (Paudi Bhuyan Tribe)

पाउड़ी भुइयां जनजाति ओडिशा के सुंदरगढ़, क्योँझर, मयूरभंज, संबलपुर, देवगढ़ और अनुगुल जिलों में निवास करती है। यह जनजाति अपनी अनूठी संस्कृति और परंपराओं के लिए जानी जाती है।

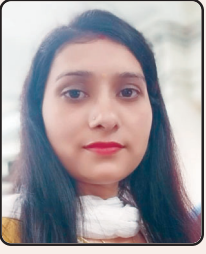
जनसंख्या: 2011 की जनगणना के अनुसार, पाउड़ी भुइयां जनजाति की कुल जनसंख्या लगभग 13,776 है।

कला और संस्कृति: पाउड़ी भुइयां जनजाति के लोग अपने पारंपरिक नृत्य और संगीत के माध्यम से अपनी संस्कृति को जीवित रखते हैं।



हिंदी भाषा एक ऐसी सार्वजनिक भाषा है, जिसे बिना भेद-भाव प्रत्येक भारतीय ग्रहण कर सकता है।

– मदन मोहन मालवीय



चुकटिया भुंजिया: विशेष रूप से कमजोर एक जनजातीय समूह

सुश्री सुनीता देवी

कनिष्ठ अनुवादक

वर्तमान समय में भारत में 705 जनजातियां तथा 75 विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह (Particularly Vulnerable Tribal Groups or PVTGs) निवास करते हैं। इसी संदर्भ में यदि ओड़िशा की बात करें तो सरकारी आंकड़ों के अनुसार ओड़िशा राज्य में 62 जनजातियां तथा 13 विशेष रूप से कमजोर जनजातीय समूह निवास करते हैं। इन्हीं में से एक अत्यंत पिछड़ी, कमजोर तथा वंचित जनजाति है— चुकटिया भुंजिया। इस लेख में चुकटिया भुंजिया जनजाति से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों को प्रस्तुत किया गया है।

परिचय

चुकटिया भुंजिया जनजाति जनसंख्या की दृष्टि से अत्यंत छोटी तथा अल्पज्ञात जनजाति है। यह मुख्य रूप से ओड़िशा के नुआपाड़ा जिले के सूनाबेड़ा पठार में निवास करती है। “भुंजिया” शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है—“भूम” तथा “जिया”। जिसमें भूम का अर्थ है—भूमि अथवा जमीन तथा जिया का अर्थ है—निर्भर रहने वाला। इस प्रकार भुंजिया का शाब्दिक अर्थ है—भूमि पर निर्भर रहने वाला। भुंजिया जनजाति द्वारा बैगा एवं छत्तीसगढ़ी की मिश्रित भाषा बोली जाती है। यह जनजाति दो वर्गों में विभाजित है— चुकटिया भुंजिया एवं चिंदा भुंजिया। इसमें “चुकटिया भुंजिया” विशेष रूप से कमजोर एक जनजातीय समूह का प्रतिनिधित्व करता है जबकि “चिंदा भुंजिया” संभवतः मिश्रित होल्वा एवं गोंड वंश से संबध रखती है जिसे सूनाबेड़ा पठार की पहाड़ियों का मूल निवासी माना जाता है। वर्ष 2007 में

चुकटिया भुंजिया विकास एजेंसी (सीबीडीए), सूनाबेड़ा के सूक्ष्म परियोजना के अंतर्गत किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार ओड़िशा में भुंजिया जनजाति की संख्या मात्र 2269 थी जिसमें 1124 पुरुष तथा 1145 महिलाएं थीं।

खान-पान

भुंजिया जनजाति का मुख्य भोजन चावल है। इसके



अतिरिक्त वे मक्का, बाजरा, मोटे अनाज, दालों तथा सब्जियों जैसे—पपीता, कद्दू, बैंगन, शकरकंद, तथा सरसों एवं अन्य तिलहनों का भी सेवन करते हैं। महुआ के फूल उनके पसंदीदा खाद्य पदार्थों में से एक है क्योंकि यह स्वादिष्ट होने के साथ-साथ अत्यंत पोषक भी होता है। वे महुआ के फूलों को भूनकर जेली बॉल बनाते हैं तथा उसे भविष्य के लिए संग्रहीत भी करते हैं। इस जनजाति के महिला एवं पुरुष दोनों ही शराब एवं मांस का सेवन करते हैं। महिलाओं को चिकन

खाने की मनाही होती है तथा गर्भवती महिलाओं के लिए बलि का मांस खाना निषिद्ध होता है। इस जनजाति के लोग अपने भोजन संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कई प्रकार के कंद-मूल, फूल-फल इत्यादि पर निर्भर रहते हैं। बांस की कोपलें (कराड़ी) उनके पसंदीदा खाद्य सामग्री के रूप में शुमार है।

आजीविका

भुंजिया जनजाति के जीवन का मुख्य आधार कृषि है। वे झूम खेती (Shifting cultivation) के माध्यम से आर्द्रभूमि के छोटे-छोटे हिस्सों में फसलें उगाने का कार्य करते हैं। झूम खेती को बेवर भी कहा जाता है। बेवर के अंतर्गत वे माइनर मिलेट्स जैसे-रागी, सुआन, गुल्जी तथा दालें, सब्जियां, तिलहन आदि उगाते हैं। इसके अतिरिक्त वे बाजरा, खीरा तथा सरसों जैसी फसलों का उत्पादन बाड़ी भूमि (रसोई उद्यान) के माध्यम से करते हैं। धान की खेती मैदानी आर्द्रभूमि में बुवाई और रोपाई विधियों द्वारा की जाती है। सिंचाई के साधनों की उपलब्धता के कारण कुछ प्रगतिशील किसानों द्वारा नकदी फसलें जैसे-गन्ना तथा सब्जियों जैसे-केला, टमाटर, पत्तागोभी एवं मिर्च की खेती भी की जाती है। यह जनजाति कृषि के अतिरिक्त शिकार करना, पशुपालन करना, मछली पकड़ना एवं मजदूरी आदि जैसी अन्य गतिविधियों में भी संलग्न है। इसके साथ ही साथ वे जंगली घास से स्वयं के उपयोग हेतु तथा बिक्री हेतु झाड़ू बनाने का कार्य भी करते हैं।

अनोखे रीति-रिवाज

भुंजिया जनजाति की परिवार की लड़कियों को लगभग दस वर्ष की आयु में पूर्व-यौवन संस्कार “कुंडाबेरा” से गुजरना पड़ता है। इस संस्कार में सबसे छोटी लड़की अन्य लड़कियों के सिर पर ताड़ के पत्तों की टोपी पहनाती है और उन्हें औपचारिक स्नान के लिए पास की नदी में ले जाती है। इसके बाद सभी लड़कियां घर लौटती हैं और जमीन पर लगे

एक तीर के चारो ओर सात बार परिक्रमा करती हैं जिसके बाद मेहमानों एवं रिश्तेदारों के लिए भोजन का आयोजन किया जाता है। जब तक कुंडाबेरा संस्कार संपन्न नहीं हो जाता कोई भी लड़की शादी नहीं कर सकती और एक बार जब यह अनुष्ठान संपन्न हो जाता है तो उसे वयस्क महिला के समान सभी प्रतिबंधों का पालन भी करना होता है।

इसके अतिरिक्त भुंजिया जनजाति का रसोईघर इन्हें एक विशिष्ट पहचान दिलाता है। इनका रसोईघर एकदम अलग होता है। किसी भी बाहरी व्यक्ति को इनके रसोईघर को छूने की अनुमति नहीं होती। यहां तक कि इनकी विवाहित बेटी भी इनके इस पवित्र रसोईघर को स्पर्श नहीं कर सकती। यदि कोई बाहरी व्यक्ति इनके रसोईघर को स्पर्श कर लेता है तो रसोईघर में आग लगा दी जाती है और उसे नीचे गिरा दिया जाता है। जब तक नया रसोईघर नहीं बन जाता तब तक भोजन किसी अन्य खुले/बंद स्थान पर बनाया जाता है।

वैवाहिक अनुष्ठान

भुंजिया जनजाति के वैवाहिक अनुष्ठान भी अत्यंत ही अनोखे हैं। इस जनजाति में रजोदर्शन के बाद लड़की को एक सप्ताह तक एक ही कमरे में बंद करके रखा जाता है। सातवें दिन महुआ के तेल में हल्दी मिश्रित करके उसे लगाया जाता है और लड़की को नदी में स्नान कराने के पश्चात उसके मामा के घर भेजा जाता है। जहां वह रसोई में बने नए चूल्हे पर पीतल के बर्तन में भोजन पकाती है। “कुंडाबेरा” की तरह यह संस्कार भी लड़की की शादी से पहले आवश्यक है। भुंजिया जनजाति में अनाचार को सर्वथा निषिद्ध माना जाता है। इस जनजाति में विवाह को वंशवृद्धि तथा आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति का साधन माना जाता है। इनके बीच किशोर विवाह के साथ-साथ चचेरे भाई-बहन विवाह भी प्रचलित है अर्थात् एक पुरुष अपनी फुफेरी या ममेरी बहन से शादी कर सकता है। इनके बीच सबसे अधिक प्रचलित विवाह एकल विवाह है। विवाह की प्रक्रिया बहुत सस्ती और सरल होती है। विवाह

संस्कार लड़की के पिता के घर पर एक पवित्र स्थान (Post) के चारो ओर घूमकर संपन्न किया जाता है। इस जनजाति में दहेज प्रथा नहीं पाई जाती लेकिन इनमें तलाक को सामाजिक रूप से स्वीकृति प्राप्त है।

धार्मिक अनुष्ठान एवं पूजा पद्धति

भुंजिया जनजाति के लोग कई देवी-देवताओं की पूजा करते हैं। उनके सर्वोच्च देवता को 'सूनादेई' के नाम से जाना जाता है जिन्हें सूनाबेड़ा गांव के एक मंदिर में स्थापित किया गया है। सूनादेई की पूजा से तीन आनुष्ठानिक कार्यकर्ता जुड़े हुए हैं—पुजारी, क्षत्रिय और कटारिया। पुजारी सूनादेई की पूजा में अनुष्ठान प्रमुख होता है जो सूनादेई को प्रसाद एवं प्रार्थना अर्पित करता है, क्षत्रिय पूजा के समय छाता लगा के रखता है और कटारिया पशु की बलि देने का कार्य करता है। मुख्य पूजा सितंबर-अक्टूबर के महीने में दशहरा के अवसर पर आयोजित की जाती है जिसमें 84 गावों के सभी भुंजिया सूनाबेड़ा में एकत्र होते हैं और अपने इष्टदेवता की पूजा करते हैं। इनकी ऐसी मान्यता है कि यदि यह पूजा सुचारु रूप से संपन्न हो जाती है तो यह गांव एवं ग्रामीणों के लिए बारिश एवं समृद्धि लाती है तथा निःसंतान महिलाओं को संतान का आशीर्वाद देती है।

मेले तथा त्यौहार

भुंजिया जनजाति तीन प्रकार के वार्षिक उत्सव मनाते हैं जैसे—दशहरा, बीज-पवित्रीकरण और महुआ संग्रह। ये त्यौहार उनकी आजीविका और सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान से संबंधित है। अक्टूबर-नवंबर के महीने में दशहरे के अवसर पर सूनादेई के मंदिर में 15 दिनों का भव्य उत्सव मनाया जाता है। सूनादेई के मंदिर में प्रतिदिन एक दीप जलता रहता है। उत्सव के 15वें दिन दूर-दूर से बड़ी संख्या में लोग इस जलते हुए दीप को देखने के लिए आते हैं और समारोह में शामिल होते हैं। इसी उत्सव स्थल पर पुराने विशाल वट वृक्ष के नीचे लिंग (भगवान शिव का लिंग

स्वरूप) विराजमान है जहां लोग पूजा-अर्चना भी करते हैं। इस वट वृक्ष की विशेषता यह है कि यह बिना सहारे और जड़ों के चट्टानों पर टिका हुआ है इसीलिए इसे अत्यंत पवित्र माना जाता है।

मार्च-अप्रैल के महीने में वट वृक्ष के नीचे एक अन्य त्यौहार के अंतर्गत बीजों के पवित्रीकरण का अनुष्ठान किया जाता है जिसमें सूनाबेड़ा गांव के क्षत्रिय इस उद्देश्य के लिए 05 किलो धान के बीज प्रदान करते हैं। इन बीजों को अनुष्ठान के माध्यम से देवता के समक्ष पवित्र किया जाता है और कृषि में उपयोग हेतु सभी भुंजियाओं में वितरित कर दिया जाता है। सोसेंगा में स्थित मंदिर भुंजिया लोगों के लिए सबसे पवित्र और महत्वपूर्ण स्थानों में से एक है। इस स्थान पर बड़ी संख्या में महुआ के पेड़ लगे हुए हैं। सूनाबेड़ा पठार के भुंजिया लोग मार्च एवं अप्रैल के महीने में इस जगह पर एकत्रित होते हैं। इस अवसर पर यहां के देवताओं को महुआ के फूल, हिरण, मुर्गे और शराब अर्पित किये जाते हैं ताकि महुआ की फसल अच्छी हो सके।

परंपरागत ग्राम परिषद

भुंजियाओं के राजनीतिक संगठन में ग्राम परिषद और अंतर-ग्राम परिषद का विशेष महत्व है। प्रत्येक भुंजिया गांव की एक स्वतंत्र सामाजिक-राजनीतिक इकाई होता है, जिसकी अपनी ग्राम परिषद और पारंपरिक नेताओं का एक समूह होता है। पारंपरिक ग्राम परिषद में बुजुर्ग पुरुष सदस्यों का एक सामूहिक निकाय होता है जिसे भाला-भाई कहा जाता है। पुजारी, क्षत्रिय एवं कटारिया जैसे पदाधिकारी और सभी बारगों के सबसे बुजुर्ग पुरुष सदस्य ग्राम परिषद के वैध सदस्य होते हैं। इस परिषद की नियमित बैठकें नहीं होती हैं। सामान्यतः महिलाओं को परिषद की बैठकों में भाग लेने की अनुमति नहीं होती लेकिन उन्हें विवादों में पक्षकार और गवाह के रूप में बुलाया जाता है। यह परिषद छोटे-मोटे झगड़ों, नियमों का उल्लंघन, संपत्ति के उत्तराधिकार से

संबंधित मामलों का निपटान करती है। परिषद का निर्णय आम सहमति पर आधारित होता है। यह हमेशा निष्पक्ष और दोनों पक्षों पर बाध्यकारी होता है। हालांकि पंचायती राज संस्थाओं की शुरुआत के परिणामस्वरूप पारंपरिक प्रणाली धीरे-धीरे कम हो रही है।

परिवर्तन एवं विकास

परिवर्तन प्रकृति का नियम है और भुंजिया जनजाति भी इससे अछूती नहीं है। समय के साथ भुंजिया जनजाति में कई तरह के सामाजिक और पारिवारिक बदलाव हुए हैं। वन अधिकारियों के सूनाबेड़ा क्षेत्र में निरंतर दौरे, वन बंगले का निर्माण तथा वन्य जीवों तथा वन्य संसाधनों के संरक्षण के लिए वन्यजीव अभ्यारण्य की स्थापना के कारण भुंजिया जनजाति के जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। वन अधिकारियों द्वारा प्रतिबंध लगाने के कारण झूम खेती अब पूरी तरह से निषिद्ध कर दी गई है जिससे इन लोगों को खाद्यान्न के लिए

भारी समस्या का सामना करना पड़ रहा है।

भुंजिया जनजाति के बच्चों के लिए शैक्षिक विकास कार्यक्रम सीबीडीए (चुकटिया भुंजिया विकास एजेंसी) की प्राथमिकता रही है। इस एजेंसी ने गावों में प्री-स्कूल के बच्चों की प्री-प्राइमरी शिक्षा को बढ़ावा देने हेतु विशेष प्रयास किए हैं। इससे भुंजिया समुदाय के बच्चों को आवासीय आश्रम विद्यालयों में शिक्षा के लिए नामांकन में सहायता मिल रही है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चुकटिया भुंजिया जनजाति ओड़िशा राज्य की एक ऐसी जनजाति है जिसे विशेष रूप से कमजोर आदिवासी समूह का दर्जा प्राप्त है। इस जनजाति के जीवन के कई क्षेत्रों में तो आमूल-चूल परिवर्तन देखने को मिला है जबकि कुछ क्षेत्रों में अभी भी विशेष रूप से ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है जिससे इनका बहुमुखी विकास हो सके तथा ये समाज की मुख्य धारा में शामिल हो सके।





श्री विनोद कुमार

लेखाकार

बोंडा जनजाति

ओड़िशा, देश का एक मात्र ऐसा राज्य है जहाँ 62 जनजातीय समुदाय निवास करते हैं, जो कि जनजातीय आबादी का सबसे बड़ा विविध समूह है। यहाँ सम्पूर्ण जनजातीय आबादी 7 जिलों कंधमाल, कोरापुट, मयूरभंज, सुंदरगढ़, नबरंगपुर, रायगडा एवं मलकानगिरी तथा अन्य जिलों के कुछ हिस्सों में पाई जाती है। इन कुल जनजातीय समुदाय में से 13 जनजातियाँ ऐसी हैं जिन्हें भारत के विशेष रूप से

प्रदेश के जंक्शन के पास दक्षिण-पश्चिम ओड़िशा के मलकानगिरी जिले के पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करती हैं। यह समुदाय आधुनिकता से कोसों दूर जिले के खैरापुट ब्लॉक की पहाड़ियों में अपनी छोटी-छोटी झोपड़ियों वाली बस्तियों में बसा हुआ है।

भाषा और संस्कृति:

बोंडा जनजाति की भाषा 'रेमो' है जिसका अर्थ लोग

अथवा मनुष्य होता है, यह ऑस्ट्रो-एशियाटिक भाषा परिवार से संबंधित है। बोंडा जनजाति की महिलाएं पारंपरिक रूप से एक छोटा सा वस्त्र 'रिंगा' पहनती हैं, जो उनकी अनूठी पहचान का हिस्सा है। इसके साथ ही वे धातु और रंगीन मोतियों के माला से अपने शरीर को सजाती हैं, जो उनकी सांस्कृतिक धरोहर को दर्शाते हैं। पुरुष भी पारंपरिक वस्त्र धारण करते हैं और वे धनुष-बाण के साथ देखे जा सकते हैं, जो उनकी शिकार की परंपरा



कमजोर आदिवासी समूह (PVTGs) के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है। इन जनजातियों में से एक महत्वपूर्ण जनजाति है बोंडा जनजाति, यह भारत की सबसे प्राचीन जनजातियों में से एक मानी जाती है, जो अपने अलग सामाजिक ढांचे, भाषा और परंपराओं के लिए जानी जाती है।

भौगोलिक स्थिति

बोंडा जनजाति भौगोलिक दृष्टिकोण से ओड़िशा के साथ सीमा साझा करने वाले राज्य, छत्तीसगढ़ एवं आन्ध्र

का प्रतीक है।

सामाजिक संरचना:

बोंडा समाज मातृसत्तात्मक है, जिसका मतलब है कि महिलाएं परिवार और समाज में प्रमुख भूमिका निभाती हैं। महिलाओं को संपत्ति का उत्तराधिकारी माना जाता है और वे परिवार के वित्तीय और सामाजिक मामलों का प्रबंधन करती हैं। बोंडा जनजाति में विवाह की परंपराएं भी विशेष हैं; यहां विवाह के दौरान दूल्हा, दुल्हन को उपहार और दहेज प्रदान

करता है, जिसे 'गद्दी' कहा जाता है। इस समाज में विवाह का निर्णय और चयन भी महिलाओं द्वारा ही किया जाता है।

जीवन-शैली और आर्थिक संरचना:

बोंडा जनजाति की जीवन-शैली सरल और स्वावलंबी है। इनका मुख्य पेशा कृषि है, जिसमें वे झूम खेती करते हैं। झूम खेती में जंगल के एक हिस्से को साफ करके फसल उगाई जाती है, और कुछ समय बाद इसे छोड़कर दूसरी जगह पर खेती की जाती है। इनके प्रमुख फसल मक्का और चावल होते हैं। इसके अलावा, ये लोग शिकार भी करते हैं, जो उनके भोजन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होता है।

चुनौतियां और संरक्षण:

बोंडा जनजाति की संस्कृति और परंपराएं समृद्ध हैं, लेकिन वे आधुनिकता और बाहरी प्रभाव से जूझ रहे हैं। शहरीकरण, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं की कमी उनकी पारंपरिक जीवन-शैली पर प्रभाव डाल रही हैं। इसके साथ ही वन अधिकार और भूमि अधिग्रहण जैसी समस्याएँ भी उनकी पारंपरिक जीवन-शैली को चुनौती देती हैं। सरकार और विभिन्न गैर-सरकारी संगठनों द्वारा इनके संरक्षण के लिए प्रयास किए जा रहे हैं, लेकिन इस जनजाति की अनूठी सांस्कृतिक धरोहर को बनाए रखने के लिए और भी प्रयासों की आवश्यकता है।

सांस्कृतिक महत्व:

बोंडा जनजाति भारतीय सांस्कृतिक धरोहर का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। उनकी विशिष्ट परंपराएं, पहनावा, और सामाजिक संरचना मानवता की विविधता और सांस्कृतिक धरोहर को समृद्ध बनाते हैं। बोंडा जनजाति की जीवन-शैली और संस्कृति का अध्ययन हमें आदिवासी समाज की गहराइयों में झांकने का अवसर प्रदान करता है और यह दर्शाता है कि कैसे ये लोग आज भी अपनी प्राचीन परंपराओं को जीवित रखे हुए हैं।

निष्कर्ष:

बोंडा जनजाति की अनूठी संस्कृति और परंपराएं हमें भारतीय समाज की विविधता का बोध कराती हैं। यह जनजाति न केवल ओड़िशा की, बल्कि पूरे भारत की सांस्कृतिक धरोहर का अभिन्न हिस्सा है। बोंडा जनजाति की परंपराओं और जीवन-शैली को संरक्षित करना न केवल एक सामाजिक आवश्यकता है, बल्कि यह हमारी सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने के लिए भी आवश्यक है। बोंडा जनजाति के अध्ययन से हमें उनके संघर्ष, उनकी संस्कृति और उनकी धरोहर को समझने का अवसर मिलता है, जिसे हमें सम्मान के साथ संजोकर रखना चाहिए।



सभी भारतीय भाषाओं के लिए यदि कोई एक लिपि आवश्यक है तो वो देवनागरी ही हो सकती है।

-जस्टिस कृष्णस्वामी अय्यर



आदिवासी : क्या हम अलग हैं ?

सुश्री शुभश्री पात्रा

सुपुत्री टी. प्रसाद राव पात्रा, लेखाकार

थोड़ा तू अलग, थोड़ा मैं अलग
कहना ये कितना आसान है।
सोचा कभी एक हैं हम ?
क्योंकि पहले हम इंसान हैं।

क्यों है इतना अंतर हम में
हम सभी को धूल में सोना पसंद है।
तो फिर क्या ऊँच क्या नीच
जब हम सभी तो
एक ही परिवार में जन्में हैं।

क्यों है इतना अंतर हम में
जन्में सब एक ही धरती पर,
क्या है यह काला-गोरा
ऊपर से काले लेकिन
अंदर से शरीर और दिल तो
सबका एक ही है।



रंग अलग, धर्म अलग
अलग अपना मकान है।
सरहदें खींची है जमीन पर
पर सबका एक आसमान है।

उम्र अलग, सोच अलग
अलग सबका मुकाम है,
रास्ते अलग, हमसफर अलग
पर मंजिल सबकी मसान है।

तुझसे नहीं, मुझसे नहीं
हमसे ये जहान है।
लाख अलग पर एक हैं हम
क्योंकि पहले हम इंसान हैं।
क्योंकि पहले हम इंसान हैं।



श्री दीपक यादव

सहायक लेखा अधिकारी

वसुधैव कुटुंबकम्

भारत की ख्याति पूरे विश्व में अनेक कारणों से है और इसके पीछे सटीक मूलभूत कारण भी हैं। वो कहते हैं न “बिना आग के धुँआ नहीं उठता” आग तो है, तभी इतनी ख्याति है जो अविरल पांच हजार वर्षों से चली आ रही है, भले ही हमने बीच-बीच में कितने ही ग्रहण देखे हों। भारत का अस्तित्व या उसकी पहचान कभी नहीं मिटी, और न ही मिट पाएगी।

परंतु जिस प्रकार से एक सामान्य स्वस्थ शरीर में सभी चीजें एकदम परफेक्ट नहीं होती, उसी प्रकार हमारे भारतीय समाज में भी कुछ विसंगतियां बची रह गई हैं, जिन्हें दूर करना हमारा नैतिक और मानवीय कर्तव्य है।

आज इस पत्रिका के प्रकाशन में मैं एक ऐसे वर्ग की बात करूंगा जो सदैव से हमारे भारतवर्ष का एक महत्वपूर्ण अभिन्न अंग रह चुका है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में इस वर्ग की भूमिका से हर बुद्धिजीवी व्यक्ति परिचित है। भारत की जैव विविधता को इस वर्ग ने किस प्रकार से संजोकर रखा है ये आप पूर्वोत्तर भारत में जाकर या उसके बारे में पढ़कर जान सकते हैं। आज मैं अपने उन्हीं भाई-बहनों के मुहों पर मेरी समझ के अनुसार एक लेख प्रस्तुत कर रहा हूँ।

गांधी जी जब साउथ अफ्रीका में घमण्डी अंग्रेजों के द्वारा फर्स्ट क्लास कोच से बाहर उतारे गए और उन्होंने इसका विरोध किया तो इस विरोध को आज हम और दुनिया गर्व के साथ याद करती है। मगर वहीं अगर कोई आदिवासी अपने सम्मान या अधिकार की रक्षा में खड़ा हो जाए तो इस विद्रोह को एक सामाजिक खतरे के रूप में

देखा जाता है, तब हम यह नहीं देख पाते कि वह बराबर सम्मान का उतना ही हकदार है जितना कि गांधी जी थे। अंग्रेजों को हम भला-बुरा कहकर अपनी पीठ थपथपा लेते हैं मगर जब उन्हीं अंग्रेजों वाली नाइंसाफी हम खुद किसी और के साथ करते हैं तो हमें कुछ गलत नहीं लगता, इसके बावजूद कि गांधी जी तो अंग्रेजों के अपने नहीं थे मगर आदिवासी भाई तो भारतीयों के अपने हैं। परंतु इस भावना के पीछे कारण यही हो सकता है कि हम उन्हें अपना नहीं मानते या हमारे लिए वो कोई “और” हैं, जो “सामान्य” भारतीयों से अलग और जुदा हैं।

कहीं ऐसा तो नहीं आज हम काले अंग्रेज हो गए हैं जो किसी और गांधी को अपने से निम्न समझ कर उसे वो सम्मान या अधिकार नहीं देना चाहते जो अपने जैसे लोगों को देते हैं? अगर ऐसा है तो हमें यह भी समझना पड़ेगा कि अत्याचार और अन्याय की उम्र लम्बी नहीं होती। उन घमण्डी अंग्रेजों को उसी “अर्धनग्न फकीर” ने उनके साम्राज्य के शीर्ष मुकुट “भारत” से भगा दिया था, जिसको उन्होंने अपमान पूर्वक ट्रेन के डब्बे में टॉयलेट के पास नीचे फर्श पर बैठने को मजबूर कर दिया था।

अंग्रेजों के किए कृत्यों को तो हम आज आसानी से अन्याय और अत्याचार कहकर अपने सीने की आग ठंडी कर लेते हैं, मगर वही अन्याय व अत्याचार जब हम उन आदिवासियों के खिलाफ करते हैं तो क्या यह सदा के लिए चलता रहेगा? एक इंसान को इंसान के तौर पर पहचानना ही इंसानियत की परिभाषा है, मगर हमारे प्यारे भारत के कुछ पथ विचलित परंपराओं और लोगों ने हम

इंसानों को इतने प्रकारों से जातियों, घमों, नस्लों इत्यादि में बांट दिया है कि हम इंसानियत ही भूल बैठे हैं।

यह अन्याय कोई एक व्यक्ति या समूह द्वारा किया गया अन्याय नहीं है बल्कि एक ऐसा अन्याय है जो समाज के तथाकथित रूप से “अगड़ा” और “आधुनिक” वर्ग उस वर्ग के खिलाफ करते हैं जो आधुनिकता और समाज की मुख्यधारा से दूर रह गए हैं। यहां पाठक को यह समझने की गलती नहीं करनी चाहिए कि मुख्यधारा में न जुड़ना किसी प्रकार से उस वर्ग को आधुनिक वर्ग से कमतर बनाता है। नहीं, एक वर्ग अपनी पारंपरिक परिस्थितियों से प्रत्यक्ष रूप से आनंदित और जुड़ा हुआ है जिन्हें अपने पारंपरिक तौर-तरीकों, वातावरण, प्राकृतिक परिदृश्य से इतना प्रेम है कि उससे अलग दुनिया को वह बेहतर नहीं समझते जिसके चलते उस दुनिया के तौर-तरीकों को नहीं अपनाते। इस गूढ़ सत्य को अज्ञानी व्यक्ति नहीं समझ पाते और दूसरों को अपने से कमतर समझने की गलती कर बैठते हैं।

इस बात को एक उदाहरण से बड़ी ही आसानी से समझा जा सकता है। हम जानते हैं कि भारत के बुद्धिजीवी समाज में एक तबका पाश्चात्य तौर-तरीकों और प्रचलित मान्यताओं को मानने वाला है जबकि उसी समाज का एक तबका अपने प्राचीन तौर-तरीकों से ही लगाव रखता है और उसे ही व्यवहार में लाता है। जैसे मिसाल के तौर पर चम्मच से खाना खाना या हाथ से खाना। जो “चम्मच वर्ग” है यह नहीं कह सकता कि हम किसी तरह से “हाथ वाले वर्ग” से बेहतर हैं या दूसरा वर्ग आधुनिकता की दौड़ में पीछे रह गया। जबकि सत्य सिर्फ इतना सा है कि एक वर्ग को एक तरीका सुविधाप्रद या बेहतर लगता है और दूसरे को दूसरा तरीका।

ठीक यही तर्क आदिवासियों और गैर-आदिवासियों पर भी लागू होता है। किसी को प्रकृति और परंपरा से इतना

लगाव या सुविधा है कि उसके अलावा उसे किसी और विकल्प की आवश्यकता ही महसूस नहीं होती। तो मेरे इस तर्क से यह तो साबित हो जाता है कि हमारे आदिवासी बंधु किसी प्रकार से गैर-आदिवासी वर्ग से कमतर नहीं हैं।

अब मैं अपनी दूसरी बात पर आता हूं कि किस प्रकार से “विकास की अंधी बेलगाम दौड़” ने सबका और विशेष रूप से हमारे आदिवासी बंधुओं के सामूहिक और व्यक्तिगत अधिकारों का हनन किया है। क्या उत्पादन को बढ़ाना ही विकास की अकेली कसौटी है? आइए देखते हैं उत्पादन के कारकों में से कुछ हैं भूमि और प्राकृतिक संसाधन। अंग्रेजी शासन में हम देखते हैं कि लगातार भारत के प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करके इंग्लैंड कितना समृद्ध हो गया। उस समय स्वतंत्रता संग्राम का एक मुद्दा यह भी था कि हमें भारतीय संसाधनों का दोहन किसी विदेशी राष्ट्र को नहीं करने देना है। जो जानते हैं वो जानते हैं कि “बर्मा टीक” का विश्व में क्या महत्त्व है। (उस समय बर्मा या म्यांमार ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य का एक हिस्सा था) अगर हम उस समय से अचानक आज की तुलना करते हैं तो साफ हो जाएगा कि अंग्रेज और भारतीयों की भूमिका आज कौन निभा रहा है। क्या आज हम यह कह सकते हैं कि हमने जो प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग विकास करने में किया है उस विकास में किसी विशेष वर्ग का हिस्सा मारा नहीं गया है, क्या यह विकास किसी वर्ग के मूलभूत-पारंपरिक-प्राकृतिक अधिकारों का हनन किए बिना किया जा रहा है? यदि हम बिना पक्षपात किए इस प्रश्न पर विचार करेंगे तो यह स्पष्ट है कि इस प्रश्न के एक से अधिक और अक्सर गोल-मोल जवाब ही मिलेंगे। एक तबका कहेगा कि संसाधन देश की सामूहिक संपत्ति है, मगर फिर क्या उस “समूह” में आदिवासी नहीं आते? क्या देश सिर्फ गैर-आदिवासियों का है? या फिर इस प्रश्न को यह कहकर हम दरकिनार कर सकते हैं कि

“अरे ये लोग पता नहीं कहाँ से आ गए” जबकि प्राचीन इतिहास को जानने वाले अच्छी तरह से जानते हैं कि यह सवाल तो मूल रूप से आदिवासियों का होना चाहिए कि “ये कहाँ से आ गए।” सिर्फ इसलिए कि एक वर्ग के पास आधुनिक मशीनें व प्रौद्योगिकी है जिससे आसानी से संसाधनों का दोहन किया जा सकता है, हम यह नहीं कह सकते कि वे सभी संसाधन मशीन बना लेने वालों के हो गए। फिर तो “जिसकी लाठी उसी की भैंस” वाली बात हो जाएगी। यह न्याय नहीं घोर अन्याय होगा यदि एक वर्ग अपने “मशीनी बाहुबल” का उपयोग करके जिन संसाधनों पर दूसरों का अधिकार है उस पर अपना आधिपत्य जमा ले और दूसरों को वंचित कर दें। हमें याद रखना चाहिए कि अन्याय की उम्र लंबी नहीं होती। विश्व के इतिहास में बहुत से हिटलर, मुसोलिनी, ईदी अमीन और पोलपोट का उदाहरण देखा जा चुका है और हम भारतीयों को तो इन उदाहरणों को भी देखने की आवश्यकता नहीं है। भारत का स्वतंत्रता संग्राम ही पूरे विश्व में इस बात की मिसाल है कि उस समय आधुनिकतम मशीनों, हथियारों और वैक्तिक संसाधनों के होते हुए भी कैसे अंग्रेजी हुकूमत को अहिंसा की मूर्ति हमारे गांधी जी ने खदेड़ दिया। (उन हिंसा का रास्ता चुनने वाले शहीदों को नमन, जिनके क्रांतिकारी विचारों ने देश की स्वाधीनता को कभी दिशा दी तो कभी त्वरण दिया अगर हम यह कहें कि हमारा संग्राम शत-प्रतिशत अहिंसक था तो अच्छे से अच्छा यह हमारी अज्ञानता और बुरे से बुरा हमारी बेशर्मी और विश्वासघात का परिचायक होगा। हम भगत सिंह, बिस्मिल, बरीन घोष, बाघ जतिन, अशफाक, चाकी जैसे आजादी के मतवालों का परम बलिदान कैसे भूल सकते हैं।)

तो हमें यह भी समझने की गलती नहीं करनी चाहिए कि सत्ता के साजो-सामान से लैस आधुनिक वर्ग के खिलाफ दूसरा वर्ग कर ही क्या लेगा? यह गलती

अंग्रेजों ने करके देख ली, आज उसी गलती को दोहराना नहीं है, विशेषतः तब जब दोनों तरफ हमारे ही लोग हैं। इसमें “तरफ” शब्द का उपयोग करना ही गलत है क्योंकि परिवार के चार सदस्यों में कोई “तरफ” नहीं होनी चाहिए और अगर है तो वह परिवार हमेशा के लिए परिवार नहीं बन पाएगा। मगर हमारा देश तो एक परिवार है जिसे इतने बलिदान देकर इकट्ठा किया गया है, वल्लभ भाई पटेल के वो “562 सेब” हम कैसे भूल सकते हैं। तो इस परिवार को बनाए रखना है और परिवार वहीं एक रहता है जहां एक बेटे के साथ दूसरों की अपेक्षा अन्याय या भेद भाव न किया जाए। “सबका साथ सबका विकास और सबका अधिकार” वाली व्यवस्था को नैतिकता के साथ लागू किया जाए जिसका औपचारिक नाम है “समावेशी विकास”।

“पूर्वजों की छोड़ी हुई जायदाद का मज़ा लेना चाहते हो तो उनके लिए हुए कर्जों का भुगतान करने का भी कलेजा रखो।”

परिवार का कोई बच्चा थोड़ा बीमार पड़ गया हो तो उसे थोड़ा बहुत अधिक दूध पिला देने को “अन्याय” या “गैर-बराबरी” नहीं कहा जाता। आखिर हमें परिवार को साथ रखना है क्योंकि उसका विकल्प सिर्फ विनाश, अव्यवस्था और हिंसा है।

इसी विचार के चलते जो वर्ग थोड़ा कमजोर रह गया है (यहां समूह की बात हो रही है किसी व्यक्ति की नहीं) उसे सहायता और सहारा देना हमारा नैतिक कर्तव्य और व्यवहारिक आवश्यकता भी है। जो सदियों से अन्याय सहते चले आ रहे हैं उनसे यह अपेक्षा करना उचित नहीं है कि वे सभी वर्गों के साथ बराबरी की प्रतिस्पर्धा करें। बराबरी की बात तब करना उचित है जब “बराबरी” बराबर रूप से सभी को दी गई हो। उस बच्चे का क्या कुसूर जिसने नवजात अवस्था में मां का दूध न पाया हो, उसे अगर आगे चलकर फल मेवा औरों से थोड़ा अधिक

दे दिया गया हो तो वह अन्याय नहीं है, अन्याय वास्तव में तो वो है जो उसके साथ बाल्यावस्था में ही हो गया। यदि उसकी थोड़ी सहायता कर दी गई तो यह पूरे समाज के लिए सामूहिक रूप से सबसे बड़ी व्यवहारिकता (Practicality) होगी। याद रहे कि वह व्यक्ति सबसे खतरनाक है जिसके पास खोने के लिए कुछ नहीं है। यदि उसे अपने साथ हुए सामाजिक अन्याय के बाद थोड़ा बहुत भी न्याय होते नहीं दिखता तो उसका सरकार पर से भरोसा उठ जाता है और वह चीजों को अपने खुद के हाथों में लेने के बारे में सोचने लगता है। जब यह सोच व्यक्ति से बढ़कर एक वर्ग में व्याप्त होने लगती है तो जन्म होता है “विद्रोह” का। विद्रोह से उसे वो सब हासिल कभी नहीं होगा जो न्यायपूर्वक उसे मिलना चाहिए था, परंतु फिर भी विद्रोह करके वह दूसरों को और सबसे महत्वपूर्ण रूप से खुद को दिखाना चाहता है कि “मैं कुछ नहीं तो विद्रोह तो कर ही सकता हूँ”।

यह बात आश्चर्यजनक नहीं होनी चाहिए कि आज दूर-दराज के पिछड़े इलाकों में सामूहिक विद्रोहों की चिंगारी जलती बुझती रहती है। इसलिए यह न सिर्फ नैतिकता बल्कि व्यवहारिकता की पराकाष्ठा है कि हमें हर वर्ग को अपने बराबर लाने का कम से कम प्रयास तो करना चाहिए, भले ही उसमें कितना ही समय लगे और जो व्यक्ति इस प्रयास को सरकार की तरफ से अन्याय के रूप में देखता है उसे यह याद रखना चाहिए कि “बपौती का मजा लेने के साथ-साथ बाप-दादा के उधारों को चुकाना भी उसी बपौती का अभिन्न हिस्सा है”।

मैं रो रहा था कि मेरे पास जूता नहीं है, तभी देखा

कि अरे उसके पास तो पैर ही नहीं है। और बात कुछ लोग करते हैं बराबरी की दौड़ की। इस पर थोड़ा सा दूसरे के नजरिए से देखने की आवश्यकता है। जब कोई व्यक्ति भारतीय सामाजिक इतिहास की गहराईयों में गोता लगाएगा तब जाकर उसे अहसास होगा कि “अन्याय” किस चिड़िया का नाम है। समुद्र किनारे बैठकर समुद्र तल में रहने वाले जीवों की गिनती करने वालों को क्या कहा जाएगा यह आप खुद समझ सकते हैं।

कुछ लोगों का कहना होगा कि अजी हमारा तो एक दोस्त है उसके यहां तो हम से बड़ा घर और बड़ी गाड़ी है, मगर फिर भी !!! तो जनाब आप जिस शहर में रहते हैं वहां ऐसा हो गया होगा मगर भारत आज भी आधे से ज्यादा वहां बसता है जो आज भी रूढ़िवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद और न जाने कितनेवादों को उसी शिद्दत के साथ ढों रहा है जिस शिद्दत से इन चीजों को जिंदा रखा गया है। हमारे गांवों में बहुत सी अच्छी चीजें हैं मगर दुर्भाग्य वश साथ ही में अनेक बुराइयां आज भी वहां सांस ले रही हैं हालांकि धीरे-धीरे वे सांसें कमजोर भी पड़ रही हैं।

मैं अपने लेख को इस भावना और प्रार्थना के साथ खत्म करूंगा कि ईश्वर हमें जल्द ही वो भारत दे जिसमें कोई किसी से आगे – पीछे, ऊपर-नीचे नहीं बल्कि बराबर रूप से देश को और अधिक बलवान बनाने में अपना-अपना यथा शक्ति योगदान दे, जहां एक व्यक्ति को उसकी व्यक्तिगत खूबियों और खामियों से आंका जाए न कि उसकी सामूहिक पहचान से। तभी हम “वसुधैव कुटुंबकम्” की भावना को सही मायनों में आत्मसात कर सकेंगे।

॥ जयहिंद, जयभारत॥





श्री आदर्श कुमार

लेखाकार

नारीवाद

“स्त्री पैदा नहीं होती, बनाई जाती है” –

सिमोन द बोउवार

नारीवाद एक विचारधारा है जिसमें स्त्री एवं पुरुष के समान अधिकार की बात की जाती है। इस विचारधारा की उत्पत्ति पितृसत्तात्मक या पुरुष प्रधान समाज की प्रतिक्रिया स्वरूप हुई है। नारीवाद महिलाओं को समान राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक अवसर प्रदान करने की बात करता है। नारीवाद का एक अर्थ यह भी है कि एक महिला जो करना चाहती है, जीवन में जो बनना चाहती है उसे वो सब करने की आजादी हो।

प्राचीन काल से ही विश्व का अधिकांश समाज पुरुष प्रधान रहा है। हर क्षेत्र में पुरुषों ने अपना दबदबा कायम किया है। ऐसा इसलिए नहीं है कि पुरुष स्त्रियों से ज्यादा श्रेष्ठ है बल्कि ऐसा इसलिए है क्योंकि सामाजिक, राजनीतिक संरचना ही इस प्रकार बनाई गई है जिसमें समय के साथ पुरुष महिलाओं पर हावी होते गए। स्त्री एवं पुरुष दोनों मानवीय स्वरूप हैं। दोनों को ईश्वर ने मानव रूप में ही गढ़ा है दोनों में अंतर मात्र लैंगिकता का है।

साक्ष्यों से प्राप्त जानकारी के अनुसार हड़प्पा सभ्यता में स्त्रियों की स्थिति काफी सुदृढ़ थी या यूँ कहे हड़प्पा सभ्यता पितृसत्तात्मक न होकर मातृसत्तात्मक थी। वैदिक सभ्यता में भी स्त्रियों की स्थिति अत्यंत उन्नत थी। स्त्रियों को भी पुरुषों के समान ही अधिकार प्राप्त थे। पुत्री के जन्म को अशुभ नहीं माना जाता था। वैदिक काल में स्त्री एवं पुरुष में कोई भेदभाव नहीं था। अफसोस की बात है कि इसके बाद से स्त्रियों की स्थिति निम्नतर होती चली गई। उत्तरवैदिक काल में पुरुषों ने स्त्रियों पर कई तरह की पाबंदियां लगानी शुरू कर

दी और उनके अधिकार छिने जाने लगे जिससे स्त्रियों का व्यक्तित्व लगातार सिमटता गया और विकास अवरुद्ध होता गया। कई ऐसी प्रथाएं जैसे- बेमेल विवाह, बहु विवाह, बाल विवाह, सती प्रथा आदि आरंभ हो गए। धीरे-धीरे स्त्रियों का दोहन अपनी इच्छा-पूर्ति के साधन के रूप में किया जाने लगा। परिणामतः समाज में स्त्रियों की स्थिति बदतर होती गई और यह सिलसिला जारी रहा।

पश्चिम के देशों में स्त्रियों की स्थिति भारतीय उपमहाद्वीप से भी कहीं ज्यादा खराब थी। पश्चिमी देशों में स्त्रियों के साथ गुलामों की तरह व्यवहार किया जाता था यही कारण है कि नारीवादी आंदोलन की शुरुआत भारत से न होकर पाश्चात्य देशों से हुई थी। नारीवादी विचारधारा यह मांग करती है कि स्त्रियों के साथ लैंगिक आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं होना चाहिए। महिलाओं के अधिकारों एवं समानता की बात लगभग हर कालखण्ड में सर्वत्र होती रही है, लेकिन नारीवाद एक विचारधारा के रूप में बिल्कुल नई व आधुनिक विचारधारा है जो महिलाओं के अधिकारों के संदर्भ में पुरुषों की दया या सदस्यता पर निर्भर होने की बात पर आपत्ति व्यक्त करता है। वस्तुतः ऐसी स्थिति नारी के दमन की स्थिति है। अतः नारीवाद एक विचारधारा के रूप में सैद्धांतिक विचारधारा है जो नारी के समानता, स्वतंत्रता, न्याय एवं अधिकारों की बात करता है।

अधिकतर लोग नारीवाद को मातृसत्ता के समकक्ष समझते हैं जिसका अर्थ है – महिलाओं द्वारा नियंत्रित समाज। हालांकि नारीवादी विचारधारा का पर्याय ऐसा बिल्कुल भी नहीं है। जहाँ पितृसत्तात्मक समाज में पुरुषों को नियंत्रक/मुखिया की भूमिका में देखा जाता है वहीं नारीवादी विचारधारा

स्त्री एवं पुरुष की समानता पर आधारित है।

नारीवाद की ऐतिहासिक विकास यात्रा पर नजर डाली जाए तो प्राचीन एवं मध्यकाल में स्त्रियों के हीनतम स्थिति के विरुद्ध महिलाओं द्वारा किसी स्पष्ट आंदोलन के संकेत नहीं मिलते हैं। राजनीतिक अवधारणा के रूप में नारीवाद 20वीं शताब्दी की देन है। संगठित नारीवाद आंदोलन की शुरुआत फ्रांसीसी क्रांति के दौरान हुई। इसमें महिलाओं ने राजनीतिक क्रियाकलापों में खुलकर भाग लिया जिसके बाद फ्रांस में स्त्रियों की स्थिति को लेकर कई महत्वपूर्ण बदलाव किए गए। अमेरिका में महिलाओं के अधिकारों के आंदोलन की शुरुआत 1840 के दशक से माना जाता है। 1869 में स्त्रियों के वोट देने के अधिकार को लेकर एक राष्ट्रीय संगठन की शुरुआत की गई। ऐसे संगठन धीरे-धीरे पूरे यूरोप में बनने लगे तथा सभी विकसित देशों से यह मांग उठने लगी स्त्रियों को वोट देने का अधिकार (मताधिकार) मिलना चाहिए। इसमें सबसे बड़ी सफलता न्यूजीलैंड में 1893 में मिली जहाँ स्त्रियों को वोट देने का अधिकार दिया गया। अमेरिका को 1783 में आजादी मिली जिसका संविधान 1787 में बनकर तैयार हुआ तथा 1789 में इसे लागू भी कर दिया गया किंतु अमेरिका में स्त्रियों को मताधिकार संविधान लागू होने के 131 साल बाद 1920 में प्रदान किया गया। आप इस बात से खुद अंदाजा लगा सकते हैं कि नारियों की स्थिति पूरे विश्व में किस प्रकार की रही होगी।

नारीवादी आंदोलन की कुछ प्रमुख विशेषताएं रही हैं जैसे- (1) लैंगिक आधार पर कार्य-विभाजन का विरोध यह तर्क और इतिहास की व्याख्या पर आधारित है कि लैंगिक आधार पर महिलाओं को घर की सीमाओं में बांधकर रखा गया। उनके साथ तरह-तरह के कुकर्म किए गए तथा उसे जीवन जीने के लिए वह सारे अवसर प्रदान नहीं किए गए जो एक व्यक्ति के विकास के लिए बहुत आवश्यक हैं। उनकी स्थिति लगभग गुलामों की तरह रही और इसके मूल में लैंगिक असमानता है। अतः नारीवाद लैंगिक आधार पर किए गए कार्य-विभाजन का घोर विरोध करता है और मांग

करता है कि महिलाओं के लिए कार्य का निर्धारण पुरुषों द्वारा या समाज के द्वारा नहीं होना चाहिए। पुरुषों की भांति महिलाओं को भी कार्य क्षेत्र चुनने का पूर्ण अधिकार होना चाहिए।

(2) पितृसत्ता का विरोध- नारीवादी विचारधारा के अनुसार इस तरह के भेदभाव की मूल वजह पितृसत्तावाद है। पितृसत्तावाद के कारण ही महिलाओं को राजनीतिक अधिकारों से भी वंचित रखा गया है। सामाजिक अधिकारों की भांति राजनीतिक अधिकारों का भी ताना-बाना कुछ इस प्रकार बुना गया ताकि महिलाओं को उससे दूर रखा जा सके। इस प्रकार एक पुरुष प्रधान सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था का निर्माण हुआ जिसमें महिलाओं की कोई भूमिका नहीं मानी गई। नारीवादी चिंतन का प्रादुर्भाव भी यहीं से होता है। अतः नारीवाद मूलतः पितृसत्तावाद की विरोधी विचारधारा है।

(3) नारी को अर्थ तंत्र से दूर रखने का विरोध- घर की चारदीवारी के सीमित परिधि में बंधने की वजह से महिलाओं का अधिकार उत्पादन तथा उत्पादन के साधनों पर कभी हो नहीं पाया जिसकी वजह से वह अर्थ तंत्र से हमेशा दूर रही है। अर्थ तंत्र से दूर होने के कारण महिलाओं का सर्वांगीण विकास संभव नहीं हो पाया। अतः अर्थ तंत्र में नारी की भूमिका बेहद जरूरी है तथा कार्य की स्वतंत्रता नारीवाद की प्रमुख विशेषता है।

नारीवाद का अंतिम लक्ष्य स्त्री एवं पुरुष के अधिकारों की समानता है परंतु अलग-अलग क्षेत्रों की सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियां भिन्न होने की वजह से लोग इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए विभिन्न तरीकें अपनाते हैं जैसे- उदारवादी नारीवाद, आमूल परिवर्तनवादी नारीवाद इत्यादि। विश्वभर के नारीवादी आंदोलनों की भांति भारत में नारीवाद लैंगिक समानता, समान कार्य के लिए समान मजदूरी का अधिकार, स्वास्थ्य और शिक्षा के लिए समान अधिकार और समान राजनीतिक अधिकार के पक्ष में है। भारत के नारीवादियों ने भारत के पितृसत्तात्मक समाज के संस्कृति

विशिष्ट मुद्दों जैसे कि बाल विवाह, विधवा विवाह एवं सती प्रथा जैसे मुद्दों के लिए आवाजें उठाई हैं और उन्हें बकायदा सफलता भी हासिल हुई है। सुविधानुसार भारत में नारीवाद के इतिहास को तीन चरणों में समझा जा सकता है:-

(1) प्रथम चरण- 19 वीं शताब्दी के मध्य (1850) से महात्मा गांधी के आगमन (1915) तक इस चरण में समाज सुधार आंदोलन की प्रमुख भूमिका रही है। यह चरण समाज में विद्यमान अंधविश्वासों, रूढ़िवादी परंपराओं जैसे- सती प्रथा, बाल विवाह, देवदासी प्रथा आदि को समाप्त करने के उद्देश्य पर केंद्रित था। राजा राममोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, स्वामी विवेकानन्द, ज्योतिबा फुले एवं दयानंद सरस्वती आदि विचारकों एवं समाज सुधारकों ने महिलाओं से जुड़े प्रश्नों को प्रमुखता दी तथा विभिन्न संगठनों एवं कानूनी सुधार के माध्यम से स्त्री शिक्षा, सती प्रथा, विधवा पुनर्विवाह और स्त्री अधिकार के दिशा में काफी प्रयास किए एवं बहुत हद तक सफलता भी प्राप्त की।

(2) द्वितीय चरण- महात्मा गांधी के आगमन (1915) से लेकर भारत की आजादी तक (1947) का है। इस चरण में महिलाओं ने स्वतंत्रता आंदोलन में खुलकर हिस्सा लिया।

भारतीय महिला संघ (1917) जैसी विभिन्न महिला संगठन की स्थापना हुई। महात्मा गांधी ने सती प्रथा, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, छुआछुत एवं विधवाओं के शोषण का पुरजोर विरोध किया तथा भीम राव अम्बेडकर ने सुधारों (मताधिकार) एवं संवैधानिक प्रावधानों के माध्यम से महिलाओं के सशक्तिकरण का सफल प्रयास किया।

(3) तृतीय चरण- आजादी (1947) से लेकर वर्तमान तक यह चरण मुख्य रूप से सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक समानता शिक्षा तक पहुँच, संपत्ति में अधिकार एवं लैंगिक विभेद के अंत से जुड़ा है।

भारतीय नारीवाद द्वारा की गई प्रगति के बावजूद आधुनिक भारत में रहने वाली महिलाओं को अभी भी भेदभाव के कई मुद्दों का सामना करना पड़ता है। पिछले दो दशकों में लिंग चयनात्मक गर्भपात की प्रवृत्तियाँ भी सामने आई हैं। इतनी भेदभाव भरी नीतियों के बावजूद भी आधुनिकता के इस युग में महिलाओं ने साबित कर दिया है कि वे पुरुषों से किसी भी मामले में पीछे नहीं हैं। चाहे कोई भी क्षेत्र हो जैसे- प्रशासकीय, शैक्षिक व्यापार, परिवहन, संचार एवं अंतरिक्ष आदि हर क्षेत्र में उसकी भूमिका प्रभावी होती जा रही है।



राष्ट्र के एकीकरण के लिए सर्वमान्य भाषा से अधिक बलशाली कोई तत्व नहीं।
मेरे विचार में हिंदी ही ऐसी भाषा है।

- लोकमान्य गंगाधर तिलक



श्री कुमार भास्कर

सहायक लेखा अधिकारी

ओड़िशा की जनजातियाँ

ओड़िशा भारत के पूर्वी तट पर स्थित एक प्रमुख राज्य है जो अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत और प्राकृतिक संसाधनों के लिए जाना जाता है। यह राज्य भारत में जनजातीय आबादी के मामले में सबसे समृद्ध राज्यों में से एक है। ओड़िशा की लगभग 22.85% जनसंख्या जनजातीय है, और यहाँ की जनजातियों का इतिहास, संस्कृति और जीवन-शैली अत्यंत विविध है। ओड़िशा में 62 मान्यता प्राप्त जनजातियाँ निवास करती हैं, जिनमें से कई की अपनी अलग भाषा, परंपराएँ और रीति-रिवाज हैं।

1. कोंध (Kondh) :

कोंध (Kondh) जनजाति ओड़िशा की प्रमुख जनजातियों में से एक है। यह जनजाति विशेष रूप से ओड़िशा के आदिवासी क्षेत्रों में निवास करती है और अपनी विशिष्ट संस्कृति, परंपराओं, जीवन-शैली और रहन-सहन के लिए जानी जाती है। कोंध जनजाति की आबादी मुख्य रूप से कंधमाल, रायगड़ा, कोरापुट और कालाहांडी जिलों में पाई जाती है। यह जनजाति प्रकृति से गहरे रूप से जुड़ी हुई है और इसका जीवन कृषि और वन्य उत्पादों पर आधारित है।

कोंध जनजाति का भूगोल:

कोंध जनजाति मुख्य रूप से ओड़िशा के दक्षिणी और मध्य भागों में फैली हुई है। कंधमाल जिला कोंध जनजाति का प्रमुख निवास स्थान है। इसके अलावा, ये जनजाति रायगड़ा, कोरापुट और कालाहांडी जिलों में भी पाई जाती है। इन क्षेत्रों की भौगोलिक परिस्थितियाँ पहाड़ी और घने जंगलों वाली हैं, जो कोंध जनजाति की जीवन-शैली को प्रभावित करती हैं।

कोंध जनजाति की उत्पत्ति और इतिहास:-

कोंध जनजाति का इतिहास पौराणिक और धार्मिक

कहानियों से जुड़ा हुआ है। यह माना जाता है कि कोंध आदिवासी समुदाय प्राचीन काल से ओड़िशा के पहाड़ी और वनाच्छादित क्षेत्रों में निवास करता आ रहा है। कोंध जनजाति की भाषा 'कुई' कहलाती है, जो द्रविड़ भाषा परिवार से संबंधित है। ये जनजाति अपनी परंपराओं और संस्कारों को अत्यधिक महत्व देती है, और इनकी जीवन-शैली में प्रकृति का विशेष स्थान है।

कोंध जनजाति की संस्कृति:-

कोंध जनजाति की संस्कृति अत्यंत समृद्ध और विविध है। यह जनजाति प्रकृति पूजक होती है और इनके जीवन में प्रकृति के तत्वों जैसे धरती, जल, जंगल, पहाड़ आदि का महत्वपूर्ण स्थान है। इनकी पूजा-पद्धतियों में देवी-देवताओं की पूजा के साथ-साथ प्रकृति के तत्वों की पूजा भी की जाती है। कोंध समाज में कई त्यौहार और अनुष्ठान होते हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं:

मेरिया उत्सव : यह एक प्रमुख धार्मिक अनुष्ठान है, जिसमें कोंध लोग देवी धरती और अन्य प्राकृतिक शक्तियों की पूजा करते हैं। यह अनुष्ठान कृषि की अच्छी पैदावार और खुशहाली के लिए किया जाता है।

सारका : यह त्यौहार फसलों की कटाई के समय मनाया जाता है और कृषि चक्र का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इस समय समुदाय में सामूहिक नृत्य और गीत होते हैं।

कोंध जनजाति की भोजन शैली :-

कोंध जनजाति का भोजन मुख्य रूप से कृषि और वन्य उत्पादों पर आधारित होता है। उनका प्रमुख भोजन धान, ज्वार, बाजरा, और रागी जैसी फसलों से तैयार किया जाता है। इसके अलावा, जंगल से प्राप्त जड़ी-बूटियाँ, कंद-

मूल, और शहद भी इनके भोजन का हिस्सा होते हैं। कोंध जनजाति के कुछ प्रमुख खाद्य पदार्थ इस प्रकार हैं:

पाखाल भात : यह ओड़िशा का पारंपरिक भोजन है, जो चावल से तैयार किया जाता है और कोंध जनजाति के भोजन में विशेष स्थान रखता है।

साग-सब्जी : जंगलों में मिलने वाली जंगली सब्जियाँ और पत्तेदार सब्जियाँ इनके आहार का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होती हैं।

मांसाहार : विशेष अवसरों पर कोंध जनजाति मांसाहारी भोजन भी करती है, जिसमें जंगली जानवरों का शिकार किया जाता है।

कोंध जनजाति की सामाजिक संरचना :-

कोंध समाज की सामाजिक संरचना अत्यंत संगठित होती है। यह जनजाति पितृसत्तात्मक होती है, जिसमें परिवार का प्रमुख पुरुष होता है। प्रत्येक गाँव में एक "नायक" या "मुखिया" होता है, जो सामाजिक और धार्मिक कार्यों की देख-रेख करता है। कोंध समाज में सामूहिकता का महत्वपूर्ण स्थान है, और सभी सदस्य एक-दूसरे की मदद करते हैं।

2. संथाल जनजाति:

संथाल जनजाति की संस्कृति अत्यंत समृद्ध और विविध है। इनके सामाजिक जीवन का प्रकृति से गहरा संबंध है। संथाल लोग प्रकृति के प्रति अत्यंत श्रद्धालु होते हैं और उनके त्यौहार, नृत्य, संगीत और कला में यह श्रद्धा परिलक्षित होती है।

भोजन की आदतें:-

संथाल जनजाति का भोजन अत्यंत सरल और प्राकृतिक होता है। उनके दैनिक आहार में निम्नलिखित खाद्य पदार्थ शामिल होते हैं:

1. **धान (चावल)** - धान इनका मुख्य भोजन है, जिसे वे अपने खेतों में उगाते हैं।
2. **मछली और मांस** - संथाल लोग मछली और मांस का सेवन भी करते हैं, विशेषकर शिकार द्वारा प्राप्त मांस।
3. **वन उत्पाद** - वे जंगली फलों, सब्जियों और कंदों

का भी सेवन करते हैं, जो उन्हें जंगलों से प्राप्त होते हैं।

4. **महुआ** - महुआ के फूल से बने पेय पदार्थ संथाल समाज में प्रमुख स्थान रखते हैं, जिसे पारंपरिक तौर पर विभिन्न उत्सवों और सामाजिक समारोहों में इस्तेमाल किया जाता है।
5. **ताड़ी** - यह एक अन्य लोकप्रिय पेय है, जो ताड़ के पेड़ से निकाला जाता है और संथाल जनजाति के लोग इसे बड़े उत्साह से पीते हैं।

नृत्य और संगीत:

संथाल जनजाति के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा उनका संगीत और नृत्य है। संथाल लोग सामुदायिक नृत्यों के लिए प्रसिद्ध हैं, जिन्हें विभिन्न त्यौहारों और सामाजिक समारोहों में प्रस्तुत किया जाता है।

- **नृत्य:** संथाल जनजाति के प्रमुख नृत्यों में 'सोराय', 'करमा', और 'बहा' शामिल हैं। ये नृत्य उनके धार्मिक और सामाजिक आयोजनों का अभिन्न हिस्सा होते हैं।
- **वाद्य यंत्र:** संथाल नृत्य के दौरान ढोल, मृदंग, बाँसुरी और अन्य पारंपरिक वाद्य यंत्रों का उपयोग करते हैं, जो उनके संगीत का अभिन्न हिस्सा होते हैं।

त्यौहार:

संथाल जनजाति के लोग विभिन्न प्रकार के त्यौहार मनाते हैं, जो उनके कृषि चक्र और धार्मिक मान्यताओं से जुड़े होते हैं।

- **सोहराई:** यह एक प्रमुख त्यौहार है, जिसे संथाल लोग फसल कटाई के बाद मनाते हैं। इस त्यौहार में पशुधन और कृषि का आभार व्यक्त किया जाता है।
- **बहा पर्व:** यह बसंत ऋतु का त्यौहार है, जिसमें संथाल लोग प्रकृति और नई फसलों का स्वागत करते हैं। इस त्यौहार में संथाल लोग पारंपरिक नृत्य और संगीत का आयोजन करते हैं।

प्रसिद्ध व्यक्ति:

संथाल जनजाति से कई प्रसिद्ध व्यक्ति भी हुए हैं, जिन्होंने समाज में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इनमें

प्रमुख रूप से बिरसा मुंडा का नाम आता है, जिन्हें आदिवासी स्वतंत्रता संग्राम का नायक माना जाता है। बिरसा मुंडा ने ब्रिटिश उपनिवेशवाद के खिलाफ लड़ाई लड़ी और आदिवासी समाज में जागरूकता फैलाने का काम किया।

3. भूमिज जनजाति :

भूमिज जनजाति ओड़िशा की प्रमुख आदिवासी जनजातियों में से एक है। भूमिज शब्द का अर्थ है 'भूमि के पुत्र'। यह जनजाति अपने आप को भूमि से जुड़ा हुआ मानती है, और इसीलिए इनका मुख्य व्यवसाय कृषि है। भूमिज जनजाति मुख्य रूप से ओड़िशा, झारखंड और पश्चिम बंगाल में निवास करती है। ओड़िशा में यह जनजाति खासकर मयूरभंज, बालासोर, सुंदरगढ़, और क्योँझर जिलों में पाई जाती है।

भूगोल और निवास स्थान

ओड़िशा के उत्तरी और उत्तरी-पश्चिमी जिलों में भूमिज जनजाति का निवास है। ओड़िशा के मयूरभंज, बालासोर, क्योँझर और सुंदरगढ़ जिलों में भूमिज जनजाति की अधिकतर जनसंख्या रहती है। इनके घर आमतौर पर कच्ची मिट्टी के होते हैं, जिनकी छतें पुआल या खपरैल से बनी होती हैं।

भूमिज जनजाति की संस्कृति

भूमिज जनजाति की संस्कृति अन्य जनजातियों की तरह प्रकृति और भूमि से गहराई से जुड़ी होती है। ये लोग अपने परंपरागत रीति-रिवाजों, त्यौहारों और नृत्य-संगीत के लिए प्रसिद्ध हैं। भूमिज समाज पितृसत्तात्मक है, जहाँ परिवार का मुखिया पुरुष होता है।

धार्मिक आस्था

भूमिज लोग प्रकृति पूजक होते हैं। वे सूर्य, चंद्रमा, पहाड़, और नदियों की पूजा करते हैं। इनके प्रमुख देवी-देवताओं में बासुदेव, धरनी देवी, और ग्राम देवता शामिल हैं। इनके धार्मिक अनुष्ठानों में बलिदान का भी महत्व है, खासकर फसलों की अच्छी पैदावार के लिए।

त्यौहार और उत्सव

भूमिज जनजाति के प्रमुख त्यौहार कृषि से जुड़े होते हैं। करम पर्व इनका सबसे महत्वपूर्ण त्यौहार है, जो फसलों

की अच्छी पैदावार के लिए मनाया जाता है। इसके अलावा, सोहराई, बहा पर्व और मकर संक्रांति जैसे त्यौहार भी प्रमुख हैं। इन त्यौहारों के दौरान पारंपरिक नृत्य और गीत का आयोजन होता है, जिसमें पूरे गाँव के लोग भाग लेते हैं।

भूमिज जनजाति का भोजन

भूमिज जनजाति का मुख्य भोजन कृषि उत्पादों पर आधारित होता है। इनके भोजन में मुख्य रूप से चावल, मक्का, और बाजरा का प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा ये लोग जंगलों से मिलने वाले कंद-मूल, फल, और पत्तियों का भी सेवन करते हैं। मांसाहार का भी इनकी भोजन संस्कृति में महत्वपूर्ण स्थान है, विशेषकर त्यौहारों और धार्मिक अनुष्ठानों के दौरान।

प्रमुख खाद्य पदार्थ

1. **धान:** भूमिज जनजाति धान की खेती करती है और चावल इनका मुख्य भोजन है।
2. **कंद-मूल और फल:** वन्य उत्पादों से मिलने वाले कंद-मूल और फल इनके दैनिक भोजन का हिस्सा होते हैं।
3. **महुआ:** महुआ का फूल और इसका रस भी इनके भोजन में शामिल होता है। महुआ से शराब बनाई जाती है जो विशेष अवसरों पर पी जाती है।
4. **मांसाहार:** मछली, मुर्गी, बकरी, और सूअर का मांस भूमिज जनजाति के भोजन में प्रमुख स्थान रखता है। त्यौहारों के समय बलिदान के रूप में पशु की बलि दी जाती है और उसका मांस खाया जाता है।

भूमिज जनजाति का सामाजिक ढांचा

भूमिज समाज में सामूहिकता और एकजुटता का विशेष महत्व है। गाँव की समस्याओं और निर्णयों के लिए ग्रामसभा का आयोजन किया जाता है, जिसमें सभी परिवारों के प्रमुख भाग लेते हैं। ग्रामसभा में सामाजिक विवादों का निपटारा और सामूहिक निर्णय लिए जाते हैं।

भूमिज जनजाति और सरकारी योजनाएँ

भारतीय संविधान में जनजातीय समुदायों के उत्थान

और उनके अधिकारों की रक्षा के लिए कई प्रावधान किए गए हैं। भूमिजन जाति भी अनुसूचित जनजातियों की श्रेणी में आती है, जिससे उन्हें शैक्षिक, सामाजिक, और आर्थिक सहायता प्राप्त होती है। सरकार की विभिन्न योजनाओं के माध्यम से उन्हें रोजगार, शिक्षा, और स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ दिया जाता है। इसके अलावा, जनजातीय क्षेत्रों में जल, बिजली, और सड़कों की सुविधाओं को सुधारने के लिए भी कई योजनाएं चलाई जा रही हैं।

4. बोंडा जनजाति:

बोंडा जनजाति ओड़िशा की एक प्रमुख और प्राचीन जनजाति है, जो अपने विशिष्ट सांस्कृतिक और पारंपरिक जीवन के लिए जानी जाती है। यह जनजाति मुख्य रूप से ओड़िशा के मलकानगिरी जिले की बोंडा घाटियों में निवास करती है, जिन्हें स्थानीय रूप से "बोंडा हिल्स" कहा जाता है। बोंडा जनजाति की पहचान उनके अलग रहन-सहन, परंपराओं, वेशभूषा, और संस्कारों से होती है। ये जनजाति विशेष रूप से ओड़िशा की पहाड़ी और सुदूर क्षेत्रों में रहती है, जो उनकी सांस्कृतिक पहचान और उनके पारंपरिक जीवन को संरक्षित करती है।

निवास स्थान

बोंडा जनजाति का प्रमुख निवास क्षेत्र मलकानगिरी जिले के बोंडा घाटियों में स्थित है, जो ओड़िशा के दक्षिण-पश्चिमी भाग में पड़ता है। यह क्षेत्र ओड़िशा-आंध्र प्रदेश सीमा के निकट है और जंगलों तथा पहाड़ियों से घिरा हुआ है। बोंडा जनजाति का जीवन इन दूर-दराज पहाड़ी इलाकों में होता है, जहां वे प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर रहते हैं।

बोंडा जनजाति की संस्कृति

बोंडा जनजाति की संस्कृति अत्यंत समृद्ध और परंपरागत है। यह जनजाति मुख्य रूप से प्रकृति पूजक होती है और उनका धार्मिक जीवन विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा पर आधारित होता है। वे प्राकृतिक शक्तियों और पूर्वजों की आत्माओं की पूजा करते हैं।

धार्मिक मान्यताएँ और त्यौहार

बोंडा लोग प्रकृति को अत्यंत महत्व देते हैं और पर्वत, जंगल, नदी जैसे प्राकृतिक तत्वों की पूजा करते हैं। उनके प्रमुख त्यौहारों में "पूस पर्व" शामिल है, जो कृषि चक्र से जुड़ा होता है। इस त्यौहार के दौरान बोंडा लोग अपने पूर्वजों और देवी-देवताओं की पूजा करते हैं। इसके अलावा, वे सामूहिक नृत्य और संगीत का आयोजन करते हैं, जो उनके समाज का महत्वपूर्ण हिस्सा होता है।

भाषा और साहित्य

बोंडा जनजाति की अपनी भाषा है, जिसे "रेमो" कहा जाता है। यह भाषा ऑस्ट्रो-एशियाटिक भाषा परिवार से संबंधित है। बोंडा लोग मौखिक परंपरा पर निर्भर रहते हैं, और उनकी कहानियाँ, गीत, और लोक-कथाएँ उनके जीवन का हिस्सा हैं।

बोंडा जनजाति का भोजन

बोंडा जनजाति के भोजन की आदतें मुख्य रूप से कृषि और जंगलों से प्राप्त खाद्य सामग्रियों पर आधारित होती हैं। वे मुख्य रूप से धान, जौ, मक्का और जड़ वाली सब्जियाँ उगाते हैं। इनके भोजन में जंगली फल, कंद-मूल, और मछली भी शामिल होते हैं। बोंडा लोग मांसाहारी होते हैं और वे जंगल से शिकार किए गए जानवरों का मांस भी खाते हैं। शराब (महुआ की शराब) का सेवन भी उनके जीवन का हिस्सा है, जिसे वे सामूहिक उत्सवों और धार्मिक अनुष्ठानों में पीते हैं।

बोंडा जनजाति की सामाजिक संरचना

बोंडा जनजाति की सामाजिक संरचना मुख्य रूप से पितृसत्तात्मक होती है, जहाँ पुरुषों का प्रमुख स्थान होता है। हालांकि, बोंडा समाज में महिलाओं की स्थिति भी महत्वपूर्ण होती है। महिलाएँ कृषि और घरेलू कामों में सक्रिय रहती हैं और वे आर्थिक और सामाजिक गतिविधियों में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम करती हैं। बोंडा समाज की विशेषता यह है कि महिलाएँ अपने से बड़े पुरुषों से शादी करती हैं।





श्री रबिन्द्र कुमार दास

सहायक लेखा अधिकारी

प्राथमिक चिकित्सा (फर्स्ट एड) और उत्तरजीविता कौशल (सर्वाइवल स्किल)

यदि आपके सामने दो विकल्प रखे जाते हैं— करोड़ रुपये या जीवन! और आपको एक विकल्प चुनना हो। फिर आप कौन सा विकल्प चुनेंगे? निस्संदेह, जीवन। इसका मतलब है कि आप जीना चाहते हैं, “क्योंकि जान है तो जहान है”। इस दुनिया में जिंदा रहने के लिए, हमें उन तरीकों को जानना चाहिए जिनसे असमय मृत्यु से बचा जा सकता है। अगर हम इन तरीकों को सीख लेते हैं, तो हम बहुत हद तक असमय मृत्यु से बच सकते हैं। बेशक जीवन और मृत्यु भगवान के हाथ में है परंतु हम दुर्घटना के समय प्राथमिक सहायता देकर किसी को मौत से बचा सकते हैं। आधुनिक जीवन रक्षक तकनीक वाले कई अस्पताल उपलब्ध हैं और हजारों डॉक्टर और नर्स जीवन बचाने के लिए उदारतापूर्वक काम करते हैं। फिर भी हर साल लाखों लोग कई दुर्घटनाओं, बीमारियों और स्वास्थ्य खतरों के बारे में जागरूकता की कमी से मर जाते हैं। इस पृथ्वी में जीवित रहने के लिए, हर किसी को जीवन बचाने के लिए कुछ तकनीकें जाननी चाहिए। इस तकनीक को “सर्वाइवल स्किल्स” कहा जाता है। सबसे महत्वपूर्ण जीवन रक्षक कौशल में से “प्राथमिक चिकित्सा तकनीक” है। प्राथमिक उपचार दुर्घटना स्थल से उसकी स्वास्थ्य स्थिति को और खराब किए बिना सुरक्षित रूप से अस्पताल में स्थानांतरित करने की प्रक्रिया के अलावा और कुछ नहीं है। रोगी को अस्पताल में स्थानांतरित करने से पहले पीड़ित की स्थिति को और खराब होने से रोकने के लिए कुछ प्रकार का उपचार दिया जाता है और ये सभी प्राथमिक उपचार प्रक्रिया द्वारा कवर किए जाते हैं।

कई स्थान (विशेष रूप से दूरदराज के ग्रामीण क्षेत्र),

कार्यालय, शैक्षिक संस्थान ऐसे हैं जहां एम्बुलेंस जल्दी नहीं पहुंच सकती है। इसलिए, प्रत्येक व्यक्ति को, चाहे वह प्राथमिक चिकित्सा प्रमाणपत्र धारक हो या नहीं, कुछ बुनियादी प्राथमिक चिकित्सा तकनीकों और उत्तरजीविता कौशल को जानना चाहिए ताकि एम्बुलेंस तक पहुंचने से पहले घायल व्यक्तियों के जीवन को बचाया जा सके। यहां मैं पूरी प्रक्रिया नहीं दे रहा हूं। मेरा प्रयास थोड़ी जागरूकता देना है जो आपातकालीन स्थितियों में मदद कर सकती है। इस प्रक्रिया में हमें पता चलेगा कि:-

1. प्राथमिक चिकित्सा कौन दे सकता है?
 2. प्राथमिक चिकित्सा कब दें?
 3. प्राथमिक उपचार कैसे दें?
 4. किस प्रकार की प्राथमिक सहायता?
 5. प्राथमिक चिकित्सा कितनी समय के लिए दी जानी है
- आदि हर चीज़ को जानने के लिए हर दिन के व्यस्त कार्यक्रम के रूप में थोड़ा समय निकालना चाहिए। क्योंकि, यदि जीवन है, तो कोई व्यस्त हो सकता है। एक मृत व्यक्ति कभी व्यस्त नहीं हो सकता।

प्राथमिक चिकित्सा कौन दे सकता है?

जो व्यक्ति प्राथमिक उपचार दे सकता है उसे प्रथम सहायक कहा जाता है। प्रथम सहायक वह व्यक्ति है जिसे एक अधिकृत प्रशिक्षण निकाय से प्रमाण पत्र प्राप्त हुआ है जो दर्शाता है कि वह प्रथम सहायता प्रदान करने के योग्य है। सेंट जॉन एम्बुलेंस एसोसिएशन एवं इंडियन रेड क्रॉस सोसाइटी द्वारा जारी प्राथमिक सहायता प्रमाण पत्र उन उम्मीदवारों को प्रदान किया जाता है जिन्होंने सैद्धांतिक और व्यावहारिक

पाठ्यक्रम में भाग लिया है और जिन्होंने पेशेवर रूप से पर्यवेक्षित परीक्षा उत्तीर्ण की है। आम तौर पर लोग बीमार या दुर्घटना पीड़ित को सहायता देने से डरते हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि पुलिस या अस्पताल प्राधिकरण पीड़ित को अस्पताल ले जाने वाले व्यक्ति से कई सवाल पूछेगा। यही कारण है कि एक कानून को “भारतीय गुड सामरिटन प्रोटेक्शन गाइडलाइन्स” कहा जाता है। कानूनी शब्दों में एक गुड सामरिटन का तात्पर्य है कोई व्यक्ति जो स्वैच्छिक आधार पर किसी घायल व्यक्ति को आपातकाल में सहायता प्रदान करता है, सड़क परिवहन और राजमार्ग मंत्रालय ने मई 2015 में भारत के राजपत्र में इंडियन गुड समरिटन और बायस्टैंडर्स प्रोटेक्शन गाइडलाइन प्रकाशित की है (अधिसूचना संख्या 25035/101/2014-आरएस दिनांक 12 मई 2015)। अच्छे सामरिटन की सुरक्षा के लिए अस्पतालों, पुलिस और अन्य अधिकारियों द्वारा दिशानिर्देशों का पालन किया जाना चाहिए और उसे नुकसान नहीं पहुंचाना चाहिए।

फर्स्ट एड क्या है? प्राथमिक उपचार एक एम्बुलेंस के आगमन से पहले किसी भी चोट या अचानक बीमारी के लिए हताहत या बीमार व्यक्ति को दी गई पहली सहायता या उपचार है, क्योंकि आपदा या नागरिक संघर्ष के परिणामस्वरूप लोगों को चोटें आती हैं जिसके लिए निकटतम स्वास्थ्य सुविधा के लिए तत्काल देखभाल और परिवहन की आवश्यकता होती है। प्राथमिक उपचार के उद्देश्य हैं: जीवन की रक्षा करने के लिए, किसी की चिकित्सा स्थिति के बिगड़ने से रोकने के लिए और निकटतम स्वास्थ्य सेवा सुविधा तक सुरक्षित परिवहन सुनिश्चित करने में मदद करना।

सामान्य प्राथमिक चिकित्सा तकनीक:-

इसके अंतर्गत ड्रेसिंग, बैंडेज, कार्डियो पल्मोनरी रिससिटेशन (CPR) फास्ट निकासी तकनीक (FAST EVACUATION TECHNIQUES) आदि आता है।

परिवहन तकनीक:-

उचित प्राथमिक उपचार दिए जाने के बाद, रोगी को परिवहन करने की आवश्यकता हो सकती है। हताहतों को ले जाते समय पूरे परिवहन में सावधानीपूर्वक निगरानी रखी जानी चाहिए, कोई भी ड्रेसिंग जो लागू की गई हो, रक्तस्राव की किसी भी पुनरावृत्ति, और परिवहन सुरक्षित, स्थिर और तेज होना चाहिए।

तीन व्यक्ति कैरी और स्ट्रेचर लिफ्ट:-

इसका प्रयोग पीड़ित व्यक्ति को बेड अथवा स्ट्रेचर पर रखने अथवा कम दूरी तक ले जाने के लिए किया जाता है:-

1. प्रत्येक व्यक्ति पीड़ित के पैरों के पास सटाकर घुटने टेकता है।
2. सिर की तरफ जो व्यक्ति होता है उसके कहने पर उसके साथ अन्य बचावकर्मी एक साथ पीड़ित को उठा कर अपने घुटने पर रख लेते हैं।
3. यदि रोगी को कम उंचे स्ट्रेचर पर रखा जा रहा है तो सर के तरफ वाले व्यक्ति के कहने पर उसे स्ट्रेचर पर नीचे रख दिया जाता है।
4. यदि पीड़ित को ले जाया जाना होता है या ऊंचे स्ट्रेचर पर रखना होता है तो तब बचावकर्ता पीड़ित को इस प्रकार करवट घुमा देंगे की पीड़ित का मुख उनके सीने की तरफ रहे।
5. सिर की तरफ मौजूद व्यक्ति के कहने पर सभी बचावकर्मी एक साथ खड़े होते हैं एक साथ एक पंक्ति में चलते हुए आगे बढ़ते हैं।
6. रीढ़ की हड्डी या गर्दन में चोट की स्थिति में विशेष सावधानी बरतनी चाहिए।

बेसिक कार्डियो पल्मोनरी रिससिटेशन (Basic Cardio Pulmonary Resuscitation):-

आजकल कार्यालय में दिल का दौरा आम है। कार्यालय में व्यायाम/गतिशीलता की कमी के कारण, मधुमेह, बीपी आदि जैसी बीमारियां बैठकर काम करने वाले कर्मचारियों

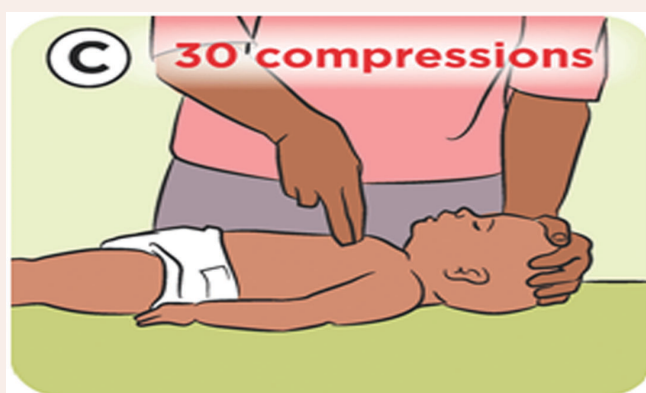
के लिए आम बात है। ऐसे मामलों में व्यक्ति अचानक बेहोश हो जाता है / सांस लेना बंद कर देता है और अन्य लोगों को ज्यादातर इस बात की जानकारी नहीं होती है कि सामान्य श्वसन को कैसे वापस लाया जाए। वे सिर्फ एम्बुलेंस को कॉल करते हैं और पीड़ित को अस्पताल में स्थानांतरित करते हैं। कुछ मामलों में उन्हें ले जाने पर डॉक्टर उसे मृत घोषित कर देते हैं। इसलिए, सरकारी कार्यालय या निजी कार्यालयों में प्रत्येक कर्मचारी को सामान्य सांस लेने के लिए सीपीआर (चेस्ट कंप्रेशन) नामक एक बुनियादी आवश्यकता को जानना चाहिए और ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर तुरंत पीड़ित का सीपीआर देना चाहिए।

कार्डियक अरेस्ट के मामले में आप निम्नलिखित संकेतों पर ध्यान दे सकते हैं:-

अचानक गिर जाना, चेतनाहीन होना, सांस न लेना आदि। हालांकि आम लोगों के लिए इसकी पुष्टि करना हमेशा आसान नहीं होता है।

सीपीआर (CPR): चेस्ट कंप्रेशन कैसे दें ?

1. हताहत को उसकी पीठ के बल किसी सख्त सतह पर लिटाएं।
2. हताहत के बगल में, उसकी ऊपरी बांह के बगल में घुटने टेकें।
3. एक हाथ की हथेली को व्यक्ति की छाती के केंद्र में रखें।
4. दूसरे हाथ की हथेली को अपने पहले हाथ के ऊपर रखें। यदि व्यक्ति की आयु युवावस्था से कम है, तो केवल एक हाथ का उपयोग करें। यदि पीड़ित बच्चा



है, तो इस तकनीक का उपयोग न करें बल्कि सीपीआर की तकनीक लागू करें

5. दोनों हाथों की उंगलियों को एक साथ बंद कर दें। व्यक्ति की पसलियों पर दबाव न डालें न ही आपको इसके ऊपरी हिस्से पर दबाव डालना चाहिए
6. सुनिश्चित करें कि आपके कंधे सीधे व्यक्ति की छाती से ऊपर हैं।
7. बाहों को फैलाकर, अधिकतम पांच से छह सेंटीमीटर नीचे की ओर धकेलें, दबाव देते समय चेस्ट पर झुकने से बचें। पूरे चेस्ट को पीछे हटने दें कंप्रेसर और रिलीज समान अवधि की होनी चाहिए। हर बार जब आप नीचे दबाते हैं तो चेस्ट को फिर से पूरी तरह से ऊपर उठने की अनुमति दें इससे हृदय में वापस रक्त आपूर्ति होने लगेगी।

10. एक मिनट में 100 संपीड़न की दर से इस तरह से 30 चेस्ट कंप्रेसर दें (30 चेस्ट कंप्रेसर की पांच बार दोहराएं), लेकिन एक मिनट में 120 से अधिक संपीड़न नहीं।

हाल ही में, प्रधान महालेखाकार भुवनेश्वर के कार्यालय में, आपातकालीन स्थिति से निपटने के तरीके को दिखाने के लिए एक मॉक ड्रिल आयोजित की गई थी। यह अभ्यास सेंट जोन्स एम्बुलेंस टीम-एजी डिवीजन के ओडीआरएफ, अग्निशमन सेवा विभाग और ब्रिगेड सदस्यों के संयुक्त प्रयास से आयोजित किया गया था। यह प्रधान महालेखाकार

(लेखापरीक्षा-1) और कार्यालय के अन्य आईएएडी अधिकारियों और कर्मचारियों द्वारा देखा गया था।



बेसिक सर्वाइवल प्रेक्टिस:-

डॉक्टर बताते हैं कि हम जो भी खाते हैं, हम अपने शरीर के लिए 40% और डॉक्टरों के लिए 60% खाते हैं। इसका मतलब है कि हमारे भोजन का 60% एक सामान्य व्यक्ति के लिए अतिरिक्त है जो बीमारियों का कारण बनता है। दिन-प्रतिदिन के जीवन में स्वस्थ रहने के लिए कुछ अभ्यास हैं जिन्हें हर एक व्यक्ति को करना चाहिए।

1. उगते सूरज को देखें। मतलब, सुबह जल्दी उठो और कुछ व्यायाम करो
2. अपने नाश्ते और भोजन की योजना बनाएं।
3. पसीना लाने वाला व्यायाम करें।
4. एक छोटे व्यायाम/कार्य से शेड्यूल के साथ शुरू करें
5. अपने फेफड़ों और यकृत से प्यार करें- और उसके लिए व्यायाम करें
6. स्वस्थ रोगी बनें मतलब नियमित जांच के लिए डॉक्टर से मिलें
7. अवांछित तनाव न लें।
8. सेल्फ साइको सपोर्ट सीखें (दर्पण के सामने अपने आप को अपनी समस्या बताओ और दैनिक डायरी लिखें)
9. अपनी चिंता का कारण जानें

41. आपकी फिटनेस और खुशी पूरी तरह से आपकी जिम्मेदारी है।

11. उपरोक्त तकनीक के अलावा योग भी हमारे स्वास्थ्य को बनाए रखने में हमारी मदद कर सकता है।

निष्कर्ष:

हमें अपने परिवार के सदस्यों को कुछ बुनियादी अस्तित्व कौशल और प्राथमिक चिकित्सा तकनीक भी सिखानी चाहिए ताकि आपातकाल के मामले में हमारे परिवार के किसी भी सदस्य / पड़ोसी का जीवन बच सके जहां तत्काल मदद प्राप्त करना संभव नहीं है। 50 वर्ष और उससे अधिक आयु के कर्मचारियों को दिल का दौरा पड़ने की अधिक संभावना है जो आजकल एक आम घटना है। इसलिए, प्रत्येक कार्यालय के सक्षम प्राधिकारी को समर्पित कर्मचारियों के साथ एक टीम के सेट के लिए आवश्यक कार्रवाई करनी चाहिए और उन्हें विशेषज्ञ प्रशिक्षकों द्वारा कार्यालय परिसर में आपातकालीन स्थिति को संभालने के लिए प्रशिक्षित करना चाहिए। मेरी राय में, आपातकालीन स्थितियों से निपटने के लिए प्रत्येक कार्यालय में स्ट्रेचर, व्हील चेयर और एम्बुलेंस वाहन होने चाहिए। इसके लिए कुछ निधि की आवश्यकता होती है और इसे सक्षम प्राधिकारी द्वारा स्वीकृत किया जा सकता है। हमें इन पूर्व सुरक्षा उपायों का तत्काल लाभ देखने को नहीं मिलेगा, लेकिन अगर आपातकाल के मामले में इससे एक भी जीवन बचाया जाता है तो बहुत बड़ी बात होगी, क्योंकि जीवन कीमती है। इसके लिए भारतीय रेड क्रॉस सोसाइटी (Indian Red Cross Society) या सेंट जोन्स एम्बुलेंस (भारत) (St. Jones Ambulance-India)- प्रशिक्षित जनशक्ति के साथ प्रत्येक कार्यालय में एम्बुलेंस प्रभाग बनाने के लिए नियमों और विनियमों के लिए संपर्क कर सकती है। ऐसा करने से बहुमूल्य जीवन बचाया जा सकता है विशेष रूप से शहर से ग्रामीण/दूरदराज के क्षेत्रों में स्थित कार्यालयों में।



श्रीमती शांतिलता सेठी

पर्यवेक्षक (सेवानिवृत्त)

ओड़िशा के डोंगरिया कोंध

डोंगरिया कोंध जनजाति ओड़िशा के रायगढ़ जिला के नियमगिरि पहाड़ में रहते हैं। इस जनजाति के लोग कई भाषा बोलते हैं। ये लोग पहाड़ में फैले गावों में रहते हैं। इस जनजाति के लोगों का मानना है कि नियमगिरि ढलान पर खेती करना इन लोगों का अधिकार है। जिसका अधिकार नियम राजा ने उन्हें दिया है। नियम राजा को ये लोग अपना वंशज मानते हैं।

इन लोगों के पास जंगली पौधों और वन्य जीवों के बारे में विशेष जानकारी होती है। ये लोग ने जंगल से जंगली खाद्य पदार्थ जैसे जंगली आम, अनार, कठालसइद इकठ्ठा करते हैं। ये लोग दुर्लभ औषधीय जड़ी-बूटी को बीमारी के लिए उपयोग करते हैं। इन्हें विशिष्ट आभूषण, रंगीन पोशाक और शरीर पर टैटू बनवाना बहुत पसंद है। इन लोगों का हेयर स्टाइल भी अलग और चमकदार होता है।

महिलाएं कान में कई बालियां पहनती हैं और नाक में तीन बालियों को एक साथ पहनती हैं। ये गले में, गोलाकार रिंग और मोती पहनती हैं और बालों में तरह-तरह की क्लिप लगाती हैं। इसी तरह लड़की भी कान में दो बालियां पहनती हैं। हजारों वर्ष से डोंगरिया नियमगिरि पहाड़ में निवास कर रहे हैं। नियमगिरि पहाड़ घने जंगल और झरने वाली नदियों का क्षेत्र है। यह जनजाति भारत में सबसे कमजोर और कुपोषण वाली जनजातीय समूहों में से एक है।

सरकार के अधिकारी इन लोगों के स्वास्थ्य को लेकर जागरूक हैं। सरकार डोंगरिया कोंध जनजाति के लिए स्वास्थ्य

संबंधी कई योजनाएँ चला रही है। ये लोग बहुत परिश्रमी और सरल विश्वासी हैं। ये लोग सुबह 4.00 बजे से पहले उठ जाते हैं और दिन भर काम करते हैं। 4 बजे के बाद ये अपने खेत और बगिया से फल तोड़कर बेचने के लिए रखते हैं।

आजकल खेत में खेती करने के लिए उन्हें नए-नए तरीकों की जानकारी दी जा रही है। ये लोग दिन में तीन बार खाना खाते हैं, सुबह, दोपहर और शाम। महुआ रस पान करना उन लोगों को बहुत पसंद है। खाने में ये दाल, सब्जी, मक्का, माण्डिया, कन्दुल, नारि कन्द और फल, हरे पत्ते, मशरूम, मछली एवं मांस खाना पसंद करते हैं।

अपने गांवों को बचाने के लिए डोंगरिया कोंध जनजाति के लोग प्रति पांच वर्ष में एक बार एक सप्ताह से ज्यादा दिन तक 'मारिया पूजा' करते हैं। उसमें लोग नियम राजा की पूजा करते हैं।

डोंगरिया कोंध जनजाति अपनी संस्कृति को कभी नहीं छोड़ते हैं। ये लोग अपनी बिरादरी में अपने रीति रिवाज से शादी करना पसंद करते हैं। डोंगरिया साड़ी और डोंगरिया डिजाइन का शॉल केवल ओड़िशा या भारत में नहीं बल्कि पूरे विश्व में प्रसिद्ध है।

डोंगरिया लोग अपनी संस्कृति को बचाने का प्रयास कर रहे हैं। लगभग आठ हजार डोंगरिया कोंध जनजाति के लोग नियमगिरि पहाड़ में अपना जीवन बिता रहे हैं। शहर की चकाचौंध से इन लोगों को कोई मतलब नहीं है। डोंगरिया कोंध जनजाति की आपसी एकता ही उन लोगों की सबसे बड़ी ताकत है।

क, ख, ग में वर्गीकृत भाषा क्षेत्र एवं उनकी राजभाषाएं

भाषा क्षेत्र	राज्य/संघ राज्य	राजभाषा/आधिकारिक भाषा	दूसरी आधिकारिक भाषा (ए)
क	बिहार	हिंदी	उर्दू
	हरियाणा	हिंदी	अंग्रेज़ी, पंजाबी
	हिमाचल प्रदेश	हिंदी	संस्कृत
	मध्य प्रदेश	हिंदी	-
	छत्तीसगढ़	हिंदी	छत्तीसगढ़ी
	झारखंड	हिंदी	अंगिका, बंगाली, भोजपुरी, खरिया, कुरमाली, कुरुख, मगही, मैथिली, मुंडारी, उड़िया, संताली और उर्दू
	उत्तराखंड	हिंदी	संस्कृत
	राजस्थान	हिंदी	-
	उत्तर प्रदेश	हिंदी	उर्दू
	अंडमान और निकोबार द्वीप समूह	हिंदी	अंग्रेज़ी
	दिल्ली	हिंदी	अंग्रेज़ी, पंजाबी
ख	गुजरात	गुजराती	हिंदी
	महाराष्ट्र	मराठी	-
	पंजाब	पंजाबी	-
	चंडीगढ़	पंजाबी	अंग्रेज़ी
	दमन और दीव तथा दादरा और नगर हवेली	कोंकणी, गुजराती, मराठी, हिंदी	-
ग	जम्मू और कश्मीर	कश्मीरी, उर्दू, अंग्रेज़ी डोगरी, हिंदी,	-
	अरुणाचल प्रदेश	अंग्रेज़ी	-
	सिक्किम	अंग्रेज़ी, नेपाली, सिक्किमी, लेप्चा	गुरुंग, लिम्बु, मगर, मुखिया, नेवारी, राय, शेरपा और तमांग
	असम	असमिया	बंगाली, बोडो
	नागालैंड	अंग्रेज़ी	-
	मेघालय	अंग्रेज़ी	खासी और गारो
	मणिपुर	मणिपुरी	अंग्रेज़ी
	त्रिपुरा	बंगाली, अंग्रेज़ी, कोकबोरोक	-
	मिजोरम	मिजो	अंग्रेज़ी, हिंदी
	पश्चिम बंगाल	बंगाली	अंग्रेज़ी
	ओड़िशा	ओड़िया	-
	तेलंगाना	तेलुगू	अंग्रेज़ी
	आंध्र प्रदेश	तेलुगू	अंग्रेज़ी
	गोवा	कोंकणी, मराठी	मराठी
	कर्नाटक	कन्नड़	अंग्रेज़ी
	केरल	मलयालम	अंग्रेज़ी
	तमिलनाडु	तमिल	अंग्रेज़ी
	लक्षद्वीप	मलयालम	अंग्रेज़ी
	पुदुचेरी	तमिल, फ्रेंच, अंग्रेज़ी	तेलुगु और मलयालम
	लद्दाख	हिंदी	अंग्रेज़ी

हिंदी के प्रयोग के लिए वर्ष 2024-25 के वार्षिक कार्यक्रम में निर्धारित लक्ष्य

क्रम सं.	कार्य विवरण	“क” क्षेत्र	“ख” क्षेत्र	“ग” क्षेत्र
1.	हिंदी में मूल पत्राचार (ई-मेल सहित)	1. क क्षेत्र से क क्षेत्र को 100% 2. क क्षेत्र से ख क्षेत्र को 100% 3. क क्षेत्र से ग क्षेत्र को 65% 4. क क्षेत्र से क व ख क्षेत्र के राज्य/संघ राज्य क्षेत्र के कार्यालय/ व्यक्ति 100%	1. ख क्षेत्र से क क्षेत्र को 90% 2. ख क्षेत्र से ख क्षेत्र को 90% 3. ख क्षेत्र से ग क्षेत्र को 55% 4. ख क्षेत्र से क व ख क्षेत्र के राज्य/संघ राज्य क्षेत्र के कार्यालय/ व्यक्ति 90%	1. ग क्षेत्र से क क्षेत्र को 55% 2. ग क्षेत्र से ख क्षेत्र को 55% 3. ग क्षेत्र से ग क्षेत्र को 55% 4. ग क्षेत्र से क व ख क्षेत्र के राज्य/संघ राज्य क्षेत्र के कार्यालय/ व्यक्ति 55%
2.	हिंदी में प्राप्त पत्रों का उत्तर हिंदी में दिया जाना	100%	100%	100%
3.	हिंदी में टिप्पण	75%	50%	30%
4.	हिंदी माध्यम से प्रशिक्षण कार्यक्रम	70%	60%	30%
5.	हिंदी टंकण करने वाले कर्मचारी एवं आशुलिपिक की भर्ती	80%	70%	40%
6.	हिंदी में डिक्टेशन/की बोर्ड पर सीधे टंकण (स्वयं तथा सहायक द्वारा)	75%	75%	75%
7.	हिंदी प्रशिक्षण (भाषा, टंकण, आशुलिपि)	100%	100%	100%
8.	द्विभाषी प्रशिक्षण सामग्री तैयार करना	100%	100%	100%
9.	जर्नल और मानक संदर्भ पुस्तकों को छोड़कर पुस्तकालय के कुल अनुदान में से डिजिटल सामग्री अर्थात् हिंदी ई-पुस्तक, सीडी/डीवीडी, पैनड्राइव तथा अंग्रेजी और क्षेत्रीय भाषाओं से हिंदी में अनुवाद पर व्यय की गई राशि सहित हिंदी पुस्तकों की खरीद पर किया गया व्यय	50%	50%	50%
10.	हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में काम करने की सुविधायुक्त	100%	100%	100%

तोशाली

	इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों जिनमें कंप्यूटर भी शामिल है, की खरीद			
11.	वेबसाइट द्विभाषी हो	100%	100%	100%
12.	नागरिक चार्टर तथा जन सूचना बोर्ड आदि द्विभाषी रूप में प्रदर्शित किए जाएं	100%	100%	100%
13.	(i) मंत्रालयों/विभागों और कार्यालयों के अधिकारियों (उ.स./नदे./सं.स) तथा राजभाषा विभाग के अधिकारियों द्वारा अपने मुख्यालय से बाहर स्थित कार्यालयों का निरीक्षण (कार्यालयों का प्रतिशत)	25% (न्यूनतम)	25% (न्यूनतम)	25% (न्यूनतम)
	(ii) मुख्यालय में स्थित अनुभागों का निरीक्षण	25% (न्यूनतम)	25% (न्यूनतम)	25% (न्यूनतम)
	(iii) विदेश में स्थित केंद्र सरकार के स्वामित्व एवं नियंत्रण के अधीन कार्यालयों/उपक्रमों का संबंधित अधिकारियों तथा राजभाषा विभाग के अधिकारियों द्वारा संयुक्त निरीक्षण	वर्ष में कम से कम एक निरीक्षण		
14.	राजभाषा संबंधी बैठकें			
	(क) हिंदी सलाहकार समिति	वर्ष में दो बैठकें		
	(ख) नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति	वर्ष में दो बैठकें (प्रति छमाही एक बैठक)		
	(ग) राजभाषा कार्यान्वयन समिति	वर्ष में चार बैठकें (प्रति तिमाही एक बैठक)		
15.	कोड, मैनुअल, फॉर्म, प्रक्रिया साहित्य का हिंदी अनुवा	100%	100%	100%
16.	मंत्रालयों/विभागों/कार्यालयों/बैंकों/उपक्रमों के ऐसे अनुभाग जहां संपूर्ण कार्य हिंदी में हों।	40%	30%	20%
		(न्यूनतम अनुभाग) सार्वजनिक क्षेत्र के उन उपक्रमों/निगमों आदि, जहां अनुभाग जैसी कोई अवधारणा नहीं है, "क" क्षेत्र में कुल कार्य का 40%, "ख" क्षेत्र में 25% और "ग" क्षेत्र में 15% कार्य हिंदी में किया जाए।		



हरिवंशराय बच्चन का परिचय

उपनाम : 'बच्चन'

मूल नाम : हरिवंशराय

जन्म : 27 नवंबर 1907, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश

निधन : 18 जनवरी 2003, मुंबई, महाराष्ट्र

पुरस्कार : पद्म भूषण पुरस्कार (1976), साहित्य अकादमी पुरस्कार, सरस्वती सम्मान

हलावादी काव्यधारा के प्रमुख कवि हरिवंशराय बच्चन का जन्म इलाहाबाद के चक मोहल्ले में एक सभ्रांत कायस्थ परिवार में 27 नवंबर 1907 को हुआ। उन्हें नाम दिया गया "हरिवंशराय" और घर में उन्हें प्यार से "बच्चन" पुकारा जाता था। आरंभिक शिक्षा-दीक्षा के बाद इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. की परीक्षा पास की और वहीं अध्यापन करने लगे। 1952 में विलियम बटलर येट्स के साहित्य पर शोध के लिए केंब्रिज विश्वविद्यालय गए। स्वदेश वापसी पर आकाशवाणी में प्रोड्यूसर बने, फिर 1955 में विदेश मंत्रालय में "हिंदी विशेषाधिकारी" के रूप में नियुक्त किए गए। 1966 में राष्ट्रपति द्वारा उन्हें राज्यसभा का सदस्य मनोनीत किया गया।

उनकी कविता-यात्रा बचपन से ही शुरू हो गई थी और स्कूली दिनों से तुकबंदियाँ करने लगे थे। 1933 में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में हुए कवि-सम्मेलन में उनके द्वारा "मधुशाला" के पाठ को श्रोताओं ने खूब पसंद किया और धीरे-धीरे उनकी मंचीय ख्याति इतनी बढ़ गई कि प्रेमचंद ने भी एक बार कहा कि मद्रास में भी यदि कोई किसी हिंदी कवि का नाम जानता है तो वह बच्चन का नाम है। उनका प्रथम विवाह श्यामा से 1927 में हुआ। 1936 में पैसे के अभाव में क्षयरोग के अधूरे इलाज के कारण श्यामा की मृत्यु हो गई। उनका दूसरा विवाह 1942 में तेजी सूरी से हुआ।

उनका पहला काव्य-संग्रह "तेरा हार" 1932 में प्रकाशित हुआ। 1935 में प्रकाशित उनका दूसरा संग्रह "मधुशाला" उनकी स्थायी लोकप्रियता और प्रसिद्धि का कारण बना। बच्चन मधुशाला का पर्याय ही बन गए। इन दोनों काव्य-संग्रहों के अतिरिक्त उनके दो दर्जन से अधिक अन्य संग्रह प्रकाशित हुए। कविताओं के अलावे उनकी आत्मकथाएँ और उनके अनुवाद भी हिंदी में उनकी स्थायी यशःकीर्ति का कारण हैं। उन्होंने बाल-साहित्य और निबंध लेखन भी किया।

प्रमुख कृतियाँ : काव्य-संग्रह : तेरा हार (1929), मधुशाला (1935), मधुबाला (1936), मधुकलश (1937), आत्म-परिचय (1937), निशा-निमंत्रण (1938), एकांत संगीत (1939), आकुल अंतर (1943), सतरंगिनी (1945), हलाहल (1946), बंगाल का काल (1946), खादी के फूल (1948), सूत की माला (1948), मिलन यामिनी (1950), प्रणय पत्रिका (1955), धार के इधर-उधर (1957), आरती और अंगारे (1958), बुद्ध और नाचघर (1958), त्रिभंगिमा (1961), चार खेमे चौंसठ खूंटें (1962), दो चट्टानें (1965), बहुत दिन बीते (1967), कटती प्रतिमाओं की आवाज़ (1968), उभरते प्रतिमानों के रूप (1969), जाल समेटा (1973), नई से नई-पुरानी से पुरानी (1985)

आत्मकथा : क्या भूलूँ क्या याद करूँ (1969), नीड़ का निर्माण फिर (1970), बसेरे से दूर (1977), दशद्वार से सोपान तक (1985)

अनुवाद : खैयाम की मधुशाला (1938), मैकबेथ (1957), जनगीता (1958), उमर खैयाम की रूबाइयाँ (1959), ओथेलो (1959), नेहरू: राजनैतिक जीवन चरित (1961), चौंसठ रूसी कविताएँ (1964), मरकत द्वीप का स्वर (येट्स की कविताएँ, 1965), नागर गीता (1966), हैमलेट (1969), भाषा अपनी भाव पराए (1970), किंग लियर (1972)

निबंध-संग्रह : कवियों में सौम्य संत (1960), नए-पुराने झरोखे (1962), टूटी-छूटी कड़ियाँ (1973)

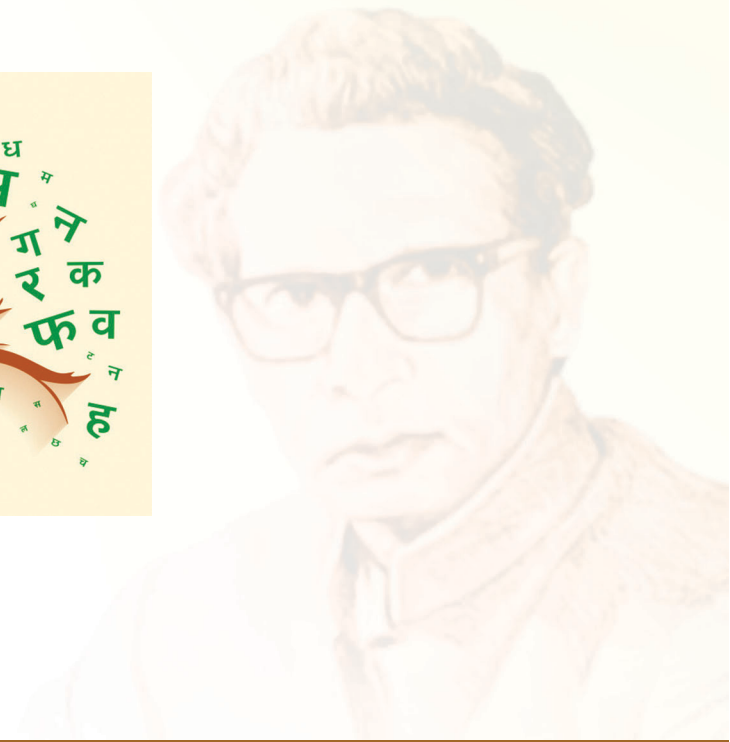
उनकी समस्त रचनात्मकता को “बच्चन रचनावली” के नौ खंडों में प्रकाशित किया गया है। उन्हें “दो चट्टानें” काव्य-संग्रह के लिए “साहित्य अकादेमी पुरस्कार” और उनकी आत्मकथा के लिए “सरस्वती सम्मान” से नवाज़ा गया। भारत सरकार ने साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में उनके योगदान के लिए उन्हें “पद्म भूषण” से अलंकृत किया।

(स्रोत- “हिन्दवी” की बेवसाइट के सौजन्य से)



हारना तब आवश्यक हो जाता है, जब लड़ाई अपनों से हो, और जीतना तब आवश्यक हो जाता है, जब लड़ाई अपने आप से हो।

- हरिवंशराय बच्चन



जो बीत गई सो बात गई

हरिवंशराय बच्चन

जीवन में एक सितारा था
माना वह बेहद प्यारा था
वह डूब गया तो डूब गया
अम्बर के आनन को देखो
कितने इसके तारे टूटे
कितने इसके प्यारे छूटे
जो छूट गए फिर कहाँ मिले
पर बोलो टूटे तारों पर
कब अम्बर शोक मनाता है
जो बीत गई सो बात गई।

जीवन में वह था एक कुसुम
थे उसपर नित्य निछावर तुम
वह सूख गया तो सूख गया
मधुवन की छाती को देखो



सूखी कितनी इसकी कलियाँ
मुरझाई कितनी वल्लरियाँ
जो मुरझाई फिर कहाँ खिली
पर बोलो सूखे फूलों पर
कब मधुवन शोर मचाता है
जो बीत गई सो बात गई।

जीवन में मधु का प्याला था
तुमने तन मन दे डाला था
वह टूट गया तो टूट गया
मदिरालय का आँगन देखो
कितने प्याले हिल जाते हैं
गिर मिट्टी में मिल जाते हैं
जो गिरते हैं कब उठते हैं
पर बोलो टूटे प्यालों पर



कब मदिरालय पछताता है
जो बीत गई सो बात गई।

मृदु मिट्टी के हैं बने हुए
मधु घट फूटा ही करते हैं
लघु जीवन लेकर आए हैं
प्याले टूटा ही करते हैं
फिर भी मदिरालय के अन्दर
मधु के घट हैं मधु प्याले हैं
जो मादकता के मारे हैं
वे मधु लूटा ही करते हैं
वह कच्चा पीने वाला है
जिसकी ममता घट प्यालों पर
जो सच्चे मधु से जला हुआ
कब रोता है चिल्लाता है
जो बीत गई सो बात गई।



दिनांक : 22.07.2024 को आयोजित नराकास (का.), भुवनेश्वर
की 74वीं अर्धवार्षिक बैठक की झलकियां



लेडीज कॉमन रूम का उद्घाटन करते अधिकारीकण



डायबिटीज़ डिटेक्शन एंड हेल्थ कैंप



प्रधान महालेखाकार (लेखा एवं हकदारी) कार्यालय द्वारा आयोजित आपदा प्रबंधन कार्यशाला



“वातायन” पत्रिका के 106 वें अंक का विमोचन करते हुए अधिकारीगण



दिनांक 26.04.2024 को आयोजित विभागीय राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक



दिनांक: 25.06.2024 को आयोजित हिंदी कार्यशाला